ओ३म्

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्तिनहापयेत् ॥ मनुः ॥

॥ होमयज्ञ ॥

प० गणेशप्रसाद शर्मा सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक
फ़र्रुखाबाद लिखित

इस में

होम अवश्य कर्त्तव्य, न करना दूषित, हवन के लाभ, मन्त्रपूर्वक विधि, वेदी का निर्माण, शाकल्य बनाना, यज्ञपात्र रखना, यज्ञकर्त्ताओं के काम, मांस के होम का निषेध, अश्वमेध, गोमेध का सच्चा अर्थ और हवन विषयक विपक्षियों के प्रश्नों का उत्तर वेदशास्त्र के प्रमाण से दर्शाया गया है

वैदिक पुस्तक प्रचारक कोष के सभ्यों की सम्मति
से प्रकाशित किया गया ॥

श्यामलाल शर्म्मा के प्रबन्ध से

सरस्वतीयन्त्रालय-इटावा में छपाया

ता० ११ । १२ । ९८ । संवत् १९५५

प्रथमवार ५००] [मूल्य =)॥

यह पुस्तक आर्यगुर्जर पु ... मिलेगी ॥

भारतसुदशाप्रवर्त्तक ॥

इस नाम का एक मासिक पत्र आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबा[द] से प्रतिमास सरलभाषा नागरी अक्षरों में छपता है इसप[त्र] में वेदशास्त्रानुकूल धर्म की व्याख्या स्त्रीशिक्षा इतिहा[स] व संक्षेपतः समाचार आदि लेख होते हैं ॥

यह पत्र प्रायः समाजों व आर्यसुजनों की सहायता [व] गुणग्राहकता से १९ वर्ष से छपता है। पत्र का नामकर[ण] महर्षि स्वामी दयानन्द स० जी महाराज ने किया था [मू]ल्य १।) मात्र डाकव्यय सहित है खर्च छपाई देकर बचत [का] पैसा धर्मार्थ व्यय किया जाता है अतः दूना लाभ है ॥ प्रार्थना पत्र इस पते पर भेजना चाहिये-

मन्त्री आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद-अथवा सम्पादक
भारतसुदशाप्रवर्त्तक-फ़र्रुख़ाबाद

आर्यगुर्जर पुस्तकालय फ़र्रुख़ाबाद-

इस पुस्तकालय में आर्यसमाज सम्बन्धी संस्कृत नागरी व उर्दू की पुस्तकें तथा कुछ अन्य भी जो उपयोगी [हैं] विकाऊ रहती हैं-तथा यज्ञ कुण्ड और यज्ञपात्र धूप, य[ज्ञ] का शाकल्य स्वामी जी महाराज का उत्तम चित्र, आ[दि] पदार्थ भी रहते हैं ॥

गणेशप्रसादशर्मा मैनेजर आर्यगुर्जर
पुस्तकालय फ़र्रुख़ाबाद ॥

होमयज्ञ

ओ३म्—अग्न आयाहि वीतये गृणानोहव्यदातये । नि होता सत्सिबर्हिषि (सामवेदे प्रथमो मंत्रः)

होम यज्ञ आर्यों का प्राचीन धर्म कार्य है इसी के आधार पर उन के धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि है । गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलहों संस्कारों में हवन होता है । संस्कारों में ही नहीं रोग, शोक, भय और कष्ट के समय में यह शुभकर्म हमारे पुण्य के पल्ले को भारी करके पाप अर्थात् क्लेशों को दूर करता है । सब से बड़ा और प्रथम पाने योग्य सुख आरोग्यलाभ है वह अग्निहोत्र ही से प्राप्त होता है । फ़ारसी वाले भी तन्दुरुस्ती को हज़ार नियामत कहते हैं । गमार तक जानते हैं कि "पहिले सुक्ख निरोगिल काया" । शास्त्र भी यही कहता है कि "धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यं मूलमुत्तमम्" ॥ अर्थात् धर्मादिवर्ग चतुष्टय का मूल निरामयता है, जिस का मुख्य आधार हवन है । नीरोगता होने से बुद्धि की वृद्धि होती है । बल और बुद्धि से विद्या धन तथा राज्यादि सुखों की प्राप्ति होती है । राज्य ही नहीं, राज्य तो तुच्छ पदार्थ है विद्या तो मनुष्य को मुक्ति जैसा परमपद दिलाती है । सुतरां सारे सुखों का मूल होम-यज्ञ है ।

अब यह दिखाना है कि हवन किस विधि का नाम है अर्थात् उस में कौन २ वस्तु ऐसी हैं जो हमारी तेजोवृद्धि और स्वस्थता के लिये मुख्य हैं और वे किस प्रकार से लाभ पहुंचाती हैं । पाठक ! होमयज्ञ में चार प्रकार के पदार्थों से आहुति दान होता है प्रथम घृत अन्न आदि पदार्थ जो कि पुष्टिदायक और तुष्टिकारक हैं । दूसरे मिष्ट बूरा बतासा कन्द इत्यादि जो शरीर के परिपालन में विशेष सहायता देते हैं तीसरे फल सम्बन्धी दाख छुआरा इत्यादि जो बलकारी और शीघ्र पाचन शील हैं । और मनुष्यों को मृदुस्वभाव बनाते हैं । चौथे सुगन्धित केशर, कपूर, चन्दन, गूगल, वालछर आदि ओषधि रूप आरोग्यदायक हैं ये पदार्थ हमारे रोगों को दूर कर बलादि की वृद्धि करते हैं । इन सब पदार्थों को शुद्ध व स्वच्छ करके वेद के मंत्रों द्वारा प्रदीप्त अग्नि में आहुति देना इसी का नाम होमयज्ञ है । अब प्रश्न होता है कि होम में जो कुछ पदार्थ जलाये जाते हैं वे तो वहीं भस्म हो कर राख की ढेरी हो जाते हैं हमें उन से क्यों कर लाभ होता है ?

महाशय ! अग्नि में जो कुछ छोड़ते हैं वे पदार्थ नष्ट नहीं होते किन्तु उन का रूपान्तर हो जाता है पदार्थ विद्या के जानने वाले बड़े २ फिलासफरों ने साइन्स से सिद्ध कर दिखाया है कि किसी पदार्थ का सर्वनाश नहीं होता केवल दशा बदल जाती है जैसे जब कपूर व चन्दन जलाते हैं तो थोड़ी देर में दिखाई देता है कि धुआं निकल कर चारो ओर सुगन्धि भर गई और कपूर कुछ नहीं रहा । यदि जलते कपूर के ऊपर कोई कांच का ढक्कन रख दें तो उस में किञ्चित् सेहल और कारिख झलकने लगती है और चन्दन की राख हो जाती इस से यह प्रतिपन्न होता है कि किसी पदार्थ के जलाने पर धुआं, भाफ, पानी और राख बनती है अर्थात् दग्ध वस्तु में से इतना भाग निकल कर दूसरे रूप में हो जाता है । इसी प्रकार जो कुछ जलाया जाता है वह वाष्प (भाफ) रूप हो वायु के साथ मिल कर गगन मंडल में पहुंचता है । क्योंकि अग्नि का यह गुण है कि जो पदार्थ इस में डालो उस को सूक्ष्म रूप में कर देता है और सूक्ष्म होने ही के कारण (अर्थात् हलका होने से) हवा में मिलता है किसी पदार्थ में कोई वस्तु तभी मिला सकते हैं जब उस को वैसा ही करदें जैसे स्वरूप से उसे मिलाना अभीष्ट है जब तक ऐसा नहीं कर पाते वह उस में यथावत् नहीं मिलता किन्तु ऊपर ही ऊपर मुलम्मा सा रहता है । इस लिये वायु अथवा जल किम्वा मेघ (बादल) में मिलाने के लिये इस के सिवा अन्य कोई यथोचित (माकूल) उपाय नहीं कि उस पदार्थ को अग्नि के भेंट कर दें । वेदों में अग्नि आदि ३३ देवतों का वर्णन है जिन के नाम आगे लिखे हैं वे सब इसी होम से तुष्ट और तृप्त होते हैं सुतरां उन सब देवतों के भोजनादि का प्रबन्ध कर्त्ता अग्नि देवता है जैसे किसी सभ्ययूरोपियन वा मुसल्मान को खाना देने में एक अङ्गरेज वा मुहम्मदी की आवश्यकता होती है, कारण कि सजाती जन अपने थोक की प्रकृति (तबियत) और स्वभाव (मिजाज) को पहिचान कर तदनुरूप वर्तता है और असंकोच व बेरोक उस के पास जाता है इसी प्रकार अग्नि देवता दूसरे देवों को सत्कृत करता है । इसी मूल पर गीता में भी लिखा है कि " देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परंभावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ, । इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्तेस्तेनएवसः ॥ अ० ३ श्लोक ११ । १२ ॥

भावार्थ-यह है कि इसी यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं वे ही फिर तुम लोगों को सन्तुष्ट करते और सुखों को वढ़ाते हैं यों परस्पर की प्रसन्नता से परम कल्याण की प्राप्ति होती है।

ऋग्वेद तथा अथर्व वेद में ३३ देवतों का वर्णन आया है यजुर्वेद में (अग्निर्देवता०) आदि ४० गिनाये हैं:-किन्तु मुख्य करके यजुर्वेद में भी ३३ का प्रसङ्ग बहुधा आया है अर्थात् अग्नि आदि आठ वसु प्राणादि ११ रुद्र और चैत्रादि बारह आदित्य, इन्द्र (मेघ) विजली और प्रजापति (अर्थात् मेघ, सूर्य वा पश्वादि जीव) ये सब यज्ञ का भाग लेते हैं-इस प्रकार से कि प्रथम अग्नि, आज्याहुति वा चरु को ग्रहण कर उस के परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देता है अर्थात् सूक्ष्मावस्था करके वायु को प्रदान करता है वायु उस को आकाश (ईथर) को देता हुआ इन्द्र अर्थात् मेघ (बादल) को पहुंचाता है। बादल से सूर्य, चन्द्रमा अपनी २ किरणों से आकृष्ट करते हैं। सुतरां सूर्य चन्द्रमा भी उस के भागी होते हैं। यही सूर्य पुनः बादल को अपनी प्रखर किरणों से छिन्न भिन्न कर जल विन्दु बनाने का हेतु होता है अर्थात् मेघ वरुण रूप हो जाता है अथवा यों कहो कि मेघ उस हवि को जल द्वारा वरुण देवता के अर्पण करता है तदुपरि वरुण (जल) वृष्टि रूप से समस्त वसु रुद्र आदित्य आदि को तृप्त करता है इस प्रकार एक दूसरे के सहारे समस्त जड़ (पृथिव्यादि) तथा चेतन (मनुष्यादि देवता प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार मनुस्मृति में भी लिखा है "अग्नौ प्रास्ताहुतिस्सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नन्ततः प्रजाः" जो आहुति अग्नि में देते हैं वह भाफ होकर बादल बन जाती है। फिर सूर्य की किरणों का उस में योग होने से वर्षा होती है। वृष्टि होने से अन्न (जो जीवों के जीवन का हेतु है) शुद्ध और अधिक उत्पन्न होता है अन्न से वीर्य और वीर्य से प्रजा उत्पन्न होती है ऐसा ही गीता में भी महाराज कृष्णचन्द्र का वाक्य है॥

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवतिपर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः"

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है "अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिरग्नेर्वा एता जायन्ते तस्मादाह तपोजाइति" श० कां० ५ अ० ३। "जो यज्ञ के द्रव्य अग्नि में डाले जाते हैं उन से धुंआं और भाफ बनती है अर्थात् जल का अंश भाफ हो जाता है। शेष जो पृथ्वी तत्त्व का सूखा अंश है उस से धुआं

निकलता है। भाफ से बादल बादलों से वर्षा वर्षा से ओषधियां उत्पन्न होती हैं उन से अन्नदेव प्रगट होकर संसार को जिलाते हैं और प्रागुक्तसब देवता प्रसन्न अर्थात् शुद्ध होकर रोग दोष हरते हैं। आप सब लोग जानते हैं कि संसार में जितने रोग दोष उपजते हैं वे सब पवन पानी आदि देवताओं के बिगड़ने ही से होते हैं जब हवन से जल वायु शुद्ध होगा तो अवश्य मनुष्यों का जीवन निरामय रहेगा यही कारण है कि प्रायः शहरों के रहने वाले जब ओषधि से रोग मुक्त नहीं होते तब शुद्ध जल वायु सेवन के लिये पहाड़ी स्थानों को जाते हैं और बिना किसी प्रकार की दवा के आरोग्य लाभ पाते हैं। इस से यह भी विदित होता है कि उत्तम जल वायु का सेवन औषध खाने से बढ़ कर है। आज कल पवन पानी के बिगड़ जाने से अनेक रोग खड़े ही रहते हैं इसी हेतु प्रतिवर्ष डाक्टर बर्स्मन के कपूर के रस की लाखों शीशियां बिशूचिका आदि रोगों की निवृत्ति के लिये खर्च होती हैं। यही कपूर होम में पड़ता है अब विचारकीजिये कि केवल कपूर कैसे २ बड़े २ रोगों को दूर करने में सहायक है इसी प्रकार गूगल चन्दन सोमलता गिलोय और बालछर आदि ओषधियां परम हितकारक हैं जो आग में जलकर ज्वर खांसी मन्दाग्नि आदि भयानक रोगों को दूर करती हैं॥

यदि कहो कि ओषधि तो हम खाकर लाभ उठाते हैं वायु में मिल कर वे क्या लाभ देंयगी इस का उत्तर यह है कि वायु के साथ मिले हुये उन के सुगन्धित परमाणु नासिकापुट द्वारा प्रत्येक स्वांस पर शरीर में प्रवेश करते हैं और रोग को हटाकर बलबुद्धि बढ़ाते हैं। वैदिक शास्त्र में रोग निवृत्ति के जो उपाय लिखे हैं उन में जिस प्रकार ओषधि का जल के साथ पान विधान हैं वैसे ही वायु तथा बाष्प धुआं आदि से भी चिकित्सा विहित है इसी मूलपर रोगी को अनेक वस्तुयें सुंघाई जाती हैं जैसे शिरपीड़ा (दर्द सर) वा मूर्छा आदि में चन्दन कपूर आदि शीतल पदार्थ सुंघाते हैं और इस क्रिया से संच्चा लाभ होता है। कहते हैं कि शाह औरङ्गजेब के शिर में एक बार अधिक वेदना हुई उन्हों ने कहा कि हम कोई दवा पीना नहीं चांहते ऐसा किये बिना यदि कोई वैद्य विद्याभिमानी आराम करे तो अधिक पारितोषिक का अधिकारी है उस काल अनूपशहर के एक वैद्यराज जो कार्यवश देहली में विराजमान थे, उन्हों ने पंखे में ओषधि लगाकर यवन नरेश की पीड़ा दूर कर दी थी

होम यज्ञ ॥

पूर्व प्रकाशिता नन्तर ॥

[जनवरी के पत्र के १४ वें पेज से आगे]

अब प्रश्न होता है कि पंखे में तो दवा लगजाने से उसको वायुसे लाभ हुआ परन्तु होम में तो कोई बूटी नहीं वहां केवल धुआं है वह क्या गुण करता है ?

पाठक औषधि युक्त केवल धुआं ही परम गुणकारी है सुश्रुतादि प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में धुएं से रोग की निवृत्ति के उपाय लिखे हैं। यह चिकित्सा मुख्यत: पांच प्रकार से की जाती है अर्थात् (१) प्रायोगिक (२) स्नेहन (३) वैरेचन [४] कासघ्न और [५] वामनीय—बालचर आदि सुगन्धित वस्तुओंकी बत्ती बनाकर नाक के द्वारा धुआं देना प्रायोगिक कहाता है इस विधि से शरीर के ऊपरी भाग के रोग दूर होते हैं और बादाम गूगल जैसी चिकनी चीजों का धुआं मुख व नाक की राह भरना स्नेहन कहाता है इससे वातजन्य रोगों की शान्ति होती है। इसी प्रकार चिपटे कफ में बच अगर आदि का धूमपान शिर का विरेचन कहाताहै तथा त्रिकुटादि कासहारी वस्तुओं का धुआं जो मुख द्वारा लिया जाता है कंठ के स्वर भङ्गादि रोगों को दूर करता है सो कासघ्न उपाय कहाता है इसी प्रकार सींग आदि का धुआं वमन (कै) कराने के लिए देना वामनीय विधि है और बवासीर सूजन आदि आदि रोगों परभी धुआं दिया जाता है॥

वैद्यवर लोलम्बराज भी स्वकृत वैद्य जीवन में लिखते हैं कि–

अयि कुशाग्र समान मते मते,
मतिमतामतिमन्मथ मन्थरे।
ज्वर हरं रुगरिष्ट शिवावचा,
यव हविर्जतु सर्षप धूपनम् ॥

हे बुद्धिमती पंडितो में माननीय कूट, नीम के पत्ते, आंवला, बच, इन्द्रजौ, लाख, सरसों, और घी आदि आठ औषधियों की धूप ज्वर को दूर करती है। चरक के इन्द्रियो पक्रमणीय अध्याय के सदाचार प्रकरण में धूमपान लिखाहै अर्थात् अग्नि होत्र का धुआं सेवन करना चाहिए "अग्निमनुत्तरेत" ऐसा स्पष्ट लिखाहै आगे "धूमप" इस शब्द काप्रयोग कियाहै हव्य का धुआं पीने वाले मुनि धूमप कहाते थे महा भारत आदि पुराणों में भी धूमप; सोमप, और आज्यप आदि शब्दों का अनेक स्थल पर प्रयोग हुआ है॥

ओंकार स्यात्र जायन्ते मृतयो दशतीर्दश।
पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धूमस्य धूमपाः॥
भारत उद्योग प० अ० १०८—

इससे प्रति पन्न है कि उत्तम धुएं का विधिवत प्रयोग किया जाना परम गुणकारी है। हवन के लाभों से अनभिज्ञ [नावाकिफ] युरोपियन डाक्टर हवा की सफाई के लिए फोनाइल और रस कपूर आदि पानी में घोलकर छिड़कते हैं परन्तु इस क्रिया से वे गूढ लाभ जो ऊपर लिखे गए यथावत् नहीं होते हां कुछ देर के लिए गुण है॥

ईसाई मुसलमान और पारसी आदि यद्यपि सब जातिएं हवन करती हैं परन्तु विधिवत् नहीं। देखो ईसाई लोग विशेषतः रोमन केथोलिक धूप देते हैं मुसलमान भी लोबान जलाते हैं और पारसी तो यहां तक होम के पाबन्द हैं कि उनके अग्निकुण्डकी अग्नि कभी बुझने नहीं पाती यदि संयोग वश बुत जायतो बड़ा दोषमानते और प्रायश्चित करतेहैं क्योंकि आर्य लोगोंने जब ईरान (मद्रदेश) को स्वाधीन किया था उस समय उन के सतसङ्ग से ईरान पारस आदि देश शिक्षित हुए; पारसी लोगोंके ग्रन्थ जिन्द बस्तामें वेदों और व्यासादि महात्माओं का लेख आया है, इसी प्रकार भारतबर्ष से युनान व रूम में विद्या फैली वहां से फरंगिस्तान में, बात यह है कि जब किसी वस्तु में से गंध निकलकार फैलतीहै तो दूर के स्थान में प्रकाश की भांति अंत में कम होजातीहै इसी प्रकार भारतीय विद्या धर्म की गंध दूसरे देशों में पाई जातीहै एक दूसरे से कहते सुनते क्रम से विधि में फेर पड़ गया परन्तु होम विधर्म्मियों के भी होता ही है सुश्रुत के सूत्र स्थान में लिखा है कि—

विषौषधी पुष्पगन्धेन वायुनोपनीतेनाक्रम्यते योदेशस्तत्र दोष प्रकृत्यविशेषेण कासश्वास प्रतिश्याय गन्धाज्ञान भ्रमशिरो रुग्ज्वर मसूरिकाभि रुपतप्यन्ते। तत्रस्थान परित्याग शान्तिकर्म प्रायश्चित्त मङ्गल जप होमोपहारेज्याञ्जलिनमस्कार तपोनियम दया दान दीक्षा भ्युपगम देवता ब्राह्मण गुरुपरैर्भवितव्यम् एवं साधुभवति॥

विषैली औषधियों के फूलों की गन्ध से जब स्थान भर जाता है तब नासि

का द्वारा वह वायु शरीर में प्रवेश करके खांसी सांस प्रतिश्याय (जुकाम) भ्रम शिरपीड़ा ज्वर और चेचक आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं उनकी शान्तिके लिए जगह बदलना, वेद की शान्ति करणादि मंत्र पढना और उन से होम कराना, संयम से रहना, चान्द्रायणादि व्रत करना, जप, अग्निहोत्र और दान करना इत्यादि उपायों से शान्ति होती है भारत वर्ष के लोग न केवल रोग दूर करने को वरन वियोगादि शोक ! निवृत्ति के लिए भी ईश्वर स्तुति पूर्वक हवन करते थे इसीसे यह धर्म कार्य में परिणत है। कुरुक्षेत्र के घोर युद्ध हुए पीछे जब स्वजनों के वियोगका युधिष्टिर को अत्यन्त शोक संताप हुआ तो उन्होंने कहा कि अब हम राज्य न करेंगे। होम यज्ञ व्रतादि तपस्या से कालयापन करेंगे उस समय व्यास जी ने अश्मगीत सुनाया अर्थात् अश्म नामक ब्राह्मण ने जो शिक्षा राजा जनक को दी वही कह सुनाई उसी में कहा है कि—

चरित ब्रह्मचर्य्यो हि प्रजायेत यजेतच।
पितृदेव मनुष्याणामानृण्यादनसूयकः ॥ ५५ ॥
सयज्ञ शीलः प्रजनेनिविष्टः प्राग्ब्रह्मचारीप्रविविक्तचक्षुः।
आराधयेत्स्वर्ग मिमंच लोकं परंचमुक्त्वाहृदयव्यलीकं ॥

भारत शान्ति राज प० अ० २८ श्लो० ५६ ॥

दूसरे के गुणों में दोष न निकाल ने वाला पुरुष; पितर देवता, और मनुष्यों के ऋण को दूर करने के लिए, यज्ञशील (होमादि करने वाला) पुत्रको उत्पन्न करे क्योंकि यज्ञकर्ता पुरुष लोक का भला करता हुआ उभय लोकमें यश पाता है ॥

पाठक—मनुष्य का प्रधान धर्म (बड़ाफर्ज) होम करना इसलिए है कि यह अपने शरीर से १२ प्रकार के मलों का त्याग करता है अर्थात् वायुको बिगाड़ता रहता है उसका प्रत्युपकार रूप प्रायश्चित होम है इसी से जो होम नहीं करता वह शास्त्रानुसार दोष भागी है देखो मनुजीने लिखा है ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्य पारदार्य्यात्मविक्रयाः।
गुरु मातृ पितृ त्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्यच ॥

अ० ११ श्लो० ५९ ॥

गौ कोवध करना अनधि कारियों से यज्ञ कराना व्यभिचार करना अपने तईं को बेचना, गुरु; माता, पिता, और पुत्र का त्याग करना नैत्तिक वेद पाठ व अग्निहोत्र का त्याग करना पाप मूल है ॥

अनाहिताग्नितास्तेयमृणा नामनयक्रिया।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य चाक्रिया ॥ ११-६९

यज्ञ न करना, चोरी करना; देव ऋषि व पितृऋण से उरिण न होना, निन्दित पुस्तकों का पढ़ना नाच इत्यादि सीखना पातक में गण्य है ॥

प्रकृति (नेचर) को देखने से भी यही भान होता है कि वायु आदि का पवित्र रखना अवश्य है ईश्वर की ओर से पवन शुद्धि के दो उपाय देखे जाते हैं एक आंधी का आना दूसरा सुगन्धित फूलों का उपजना; परन्तु इन दोनों का मुख्यहेतु अग्नि है सूर्य्यकी प्रचण्ड उष्णकिरणों के प्रभाव से बड़ी २ आंधियां आती हैं पदार्थ विद्या के विद्वानों ने यही निदान किया है कि सूर्य्य की गर्मी से ऊपर की वायु हलकी होकर दूसरे स्थान को जाती और दूसरी स्थूल हवा इस जगह को भरती है यों परस्पर टक्कर लगने से हवा में एक बड़ा धक्का लगता है यह दूर तक आंधी रूप पहुंचता है जिस से भीतरी स्थानों की दुर्गंधित वायु निकल जाती है और वहां पर शुद्ध पवन प्रवेश करती है इसी प्रकार पृथ्वी व सूर्य्य की गर्मी से बनस्पति उगती और फूल खिलते हैं उनकी सुगन्धि हवा में भरती है सुतरां परम पिता परमात्मा स्वयं सूर्य्यादि की अग्नि और बनस्पति के शाकल्य से होम करते हैं और संसार को हवन करने की शिक्षा देते हैं ऋतुपर्य्यय अर्थात् चैत्र वा क्वार आदि में अधिक रोग होते हैं सो इन्हीं अवसरों पर फूल भी अधिक खिलते हैं चैत्र में बसन्त ऋतु होती है उस काल प्रायः बनस्पति फूलती है क्वार में केवड़ा इत्यादि बहुतायत से होता है। धर्म शास्त्र में इन्हीं अवसरों पर अधिक हवन करने की आज्ञा है—

प्राचीन काल में दो बड़े अवसर होमके थे एक होली दूसरा दीपावली; तथा बरसात में भी श्रावणी आदि पर होम होता था— प्रायुक्त प्राकृतिक मूल पर वेदों में होम की मुख्य शिक्षा है ॥

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधिवयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वाशतहिमा ऋधेम ॥
अथर्व० का० १९ अनु० ७ मं० ३। ४

(अयं) यह (अग्नि) आग व ईश्वर [सायं सायं] (प्रातः प्रातः) सांझ सबेरे

॥ होमयज्ञ ॥

उपासित (सौमनस्य) आरोग्य, आनन्द और (वसो) उत्तम २ पदार्थों का दाता है। इसी कारण ईश्वर तथा अग्नि को वसुदान कहते हैं । हम लोग अग्निहोत्र करने से पुष्ट होते हैं–और १०० सौ वर्ष जीने की इच्छा रखते हैं।

इस प्रकार आर्य लोग सायं प्रातः तथा बड़े २ अवसरों पर होम यज्ञ करके पुष्ट और बलिष्ठ रहते थे, वे लोग इस बात को खूबजानते थे कि रोग का आक्रमण होने के पूर्वही उसे दूरभगाना उचित है। "संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः"–आग लगने पर कुआ खोदने से काम नहीं चलता। अब जब विशूचिका (हैज़ा) फैलती है तब तो लोग बहुत कुछ होमादि की टीमटाम करते हैं। परन्तु बरसात बीतते ही फिर बेसुध हो जाते हैं। इसी हेतु वह आगामी वर्षा फिर अपना कराल मुंह बाय खड़ी हो जाती है। और डाक्टर वर्सन के कपूर के रस की लाखों शीशियां पीजाती हैं तो भी शान्ति नहीं होती। आर्य लोग जिस प्रकार नित्य होम करते थे उसी भांति बड़े २ मेलों पर भी विशेषता से किया करते थे इस कारण मेलों में यज्ञाग्नि के भय से उस काल हज़ारीलाल (हैज़ासाहिब) नहीं आते थे— यदि आते भी तो यज्ञकुण्ड में भस्म हो जाते थे–इस बात को सब लोग जानते हैं कि जहां जन समुदाय होता है वहां की वायु भ्रष्ट हो जाती है इस का कारण यह है कि श्वांस के साथ जो वायु भीतर जाती है और जो उसास पर बाहर निकलती है इन दोनों में बड़ा अन्तर रहता है–पहिली वायु जो ग्रहण की जाती वह शुद्ध और जो बाहर को छोड़ीजाती वह यहां तक अशुद्ध होती है कि उस में प्राणप्रद वायु (आक्सिजन) बहुत थोड़ी रह जाती है, और कारबोनिक एसिडग्यास बढ़ जाती है। वैसे तो स्वच्छ वायु में कारबो० ए० १३) रु० में १ पाई प्रमाण होता है इतने से कुछ हानि नहीं परन्तु गन्दी हवा में यह सौगुना बढ़ जाता जब कि हम सांस छोड़ते हैं कारण कि पवन की शरीर में प्रवृत्ति होने से प्रत्येक स्थान को वह धोकर बाहर निकलती है। इस हेतु विषाक्त हो जाती है–और जब यह विष फैलता है जब ही विशूचिकादि रोग खड़े हो जाते हैं और मेला आदि में विपत्ति पड़ती है। यद्यपि अंगरेज़ी सर्कार सफाई का बहुत प्रबन्ध करती है तथापि रोग होते ही हैं–

पुराने लोग जो मेला करते थे उन को लाख सफाई की सफाई होम करना आता था जिस से बाहर व भीतर अन्तःकरण पवित्र हो जाता था—तब तो मेलों में बड़े २ ऋषि मुनि आकर निरापद यज्ञ और उपदेश करते थे, उन्ही ऋषियों के नाम से आज मेले होरहे हैं—

प्राचीन काल में होम का यहां तक प्रचार था कि जब कोई धर्मात्मा किसी से मिलता था तो उस की कुशलता पूछने के साथ ही यह भी प्रश्न होता था कि "आप के यज्ञपात्र सुरक्षित हैं"। अर्थात् आप निर्विघ्न यज्ञ करते हैं जैसे आजकल देशी राजों से मिलने पर सोना चांदी बाफता आदि भेंट देकर कुशल पूछते हैं वैसे ही पूर्वज ऋषि महर्षियों से मिलते समय जिज्ञासु लोग हाथ में समिधा—(होम की लकड़ी) ले जाते थे प्रश्नोपनिषद् में भी लिखा है कि—

सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यश्च सत्यकामः सौर्य्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसम्पन्नाः ॥

* सुकेशा (१) सत्यकाम (२) सौर्यायणी (३) कौशल्य (४) भार्गव (५) और कबन्धी (६) ये छः ऋषि समित्पाणि अर्थात् हाथ में समिधा लिये हुए पिप्पलाद महर्षि से धर्म सम्बन्धी प्रश्न करने को उन के निकट गये ॥

इत्यादि अनेक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज पुरुषा हवन करने के बड़े भक्त और श्रद्धालु थे—सत्य है जब ऐसे थे तभी तो बल बुद्धि और विद्या में सारे जगत् के गुरू कहाये—

* (१) भरद्वाज गोत्री सुकेशा नामक ऋषि,
(२) (शैव्यः) क्षत्रिय गोत्री शिवि का पुत्र सत्य काम,
(३) गर्ग गोत्री सूर्य नामक ऋषि का पुत्र सौर्य्यायणी,
(४) अश्वल का लड़का कौशल्यनामी,
(५) भृगुगोत्री वैदर्भी का पुत्र भार्गव नामक,
(६) कात्य का पुत्र कबन्धी,

इन दिनों होमयज्ञ की प्रथा लुप्तप्राय है प्राचीन ग्रन्थों के नष्ट और अव्यवहृत होने से लोगों को अब यह सुध नहीं रही कि किस काल में कौन २ वस्तुओं से कैसे हवन करना चाहिये-

जब कि बड़े २ वैद्यों ने धुआं से रोग हटाना लिखा है तो पुत्रेष्टि यज्ञ भी सत्य ही है। उस की विधि को यदि भली भांति देखा जाय तो यह जाना जायगा कि तदुक्त औषधियां गर्भाधान का हेतु हैं-इसी प्रकार पुंसवन वा सीमन्त की ओषधि जिन से हवन किया जाता है वा नासा पुट से गर्भिणी स्त्री को सुंघाई जाती हैं गर्भ की रक्षक अवश्य हैं। इसी मूल पर वेदों में यज्ञ को परम पवित्र शोधक व रक्षक कहा है—

"वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् (य० अ० १ मं० २)

(वसोः) यज्ञ (पवित्रम्) शुद्धि का हेतु (असि) है था (द्यौः) विज्ञान के प्रकाश का कारण भी, और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला है (पृथिवी) वायु के साथ देशदेशान्तर में फैलने वाला। (मातरिश्वनः) पवन को (घर्मः) शुद्ध करने वाला है (विश्वधाः) संसार का धारण करने वाला है -(परमेण धाम्ना) उत्तम स्थान से (दृँहस्व) सुख का बढ़ाने वाला है। अतएव होमयज्ञ का (मा) मत (ह्वाः) त्यागकर। (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान भी उस को (मा) न (ह्वार्षीत्) त्यागे॥

" वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥ ३ मं०॥

(वसोः) अर्थात् यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार का धारण करने और (पवित्रम्) शुद्ध करने वाला कर्म (असि) है-और (सहस्रधारम्) अनेक प्रकार के ब्रह्माण्डों को धारण करने वा सुख देने वाला है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) परमेश्वर (सविता) वसु आदि ३३ देवों का उत्पादक (पुनातु) पवित्र करे। हे! प्रभु (वसोः) यज्ञ (पवित्रेण) पवित्रता (शतधारेण) बहुत विद्याओं की धारणा से (सुप्वा) भली भांति हम लोगों को शुद्ध करे। हे! विद्वान् पुरुष (कामम्) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन वाणी के अभिप्राय को (अधुक्षः) अपने मन में पूरण करना अर्थात् जानना चाहता है॥

"अहुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ ९ मं० ॥

हे ऋत्विग् ! (यज्ञ करने वाला) मनुष्य जो अग्नि से बढ़ा हुआ (अहुतम्) कुटिलता रहित (हविर्धानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (दृंहस्व) बढ़ाओ किन्तु किसी समय भी (माह्वाः) उस का त्याग मत करो तथा यह (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान भी यज्ञ को न छोड़े इस प्रकार तुम लोग (पञ्च) एक तो ऊपर चेष्टा होना, दूसरा नीचे को तीसरे अंगसंकोचन चौथे प्रसारण (फैलाना) पाचवें चलना फिरना आदि पांच प्रकारों से होम के योग्य द्रव्य अग्नि में (यच्छन्ताम्) हवन करो और (त्वा) उस पदार्थ को (विष्णुः) जो व्यापन शील सूर्य है वह (अपहतं) (रक्षः) दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ (उरुवाताय) वायु की अत्यन्त शुद्धि तथा सुख की वृद्धि के लिये (क्रमतां) चढ़ा देता है अतएव परमात्मा (यजुर्वेद के २९ वें अध्याय में) उपदेश करते हैं कि-:

उपावसृजत्मन्यासमञ्जन्देवानांपाथ ऋतुथाहवीꣳषि । वनस्पतिः शमितादेवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ अ० २९ मं०३५

हे ! विद्वान् पुरुष तू (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) भोगने योग्य अन्नादि को (मधुना) मीठे कोमल आदि रस युक्त (घृतेन) घी आदि से (समञ्जन्) सम्यक् मिलाते हुए, (त्मन्या) अपने आत्मा से (हवींषि) लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु २ में (उपावसृज) यथावत् दिया कर अर्थात् होम किया कर । उस तेरे दिये (हव्यम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य (शमिता) शान्तिकर्त्ता (देवः) उत्तम गुणों वाला मेघ और (अग्नि) आग (स्वदन्तु) प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उन को पहुंचे:-

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु २ में होम किया करें जिस से वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि सूर्य तथा मेघ को प्राप्त हो के वर्षा के द्वारा सब का उपकारी होवे ॥

इसी ऋचा की पुष्टि महर्षि मनु जी भी करते हैं।

अग्निहोत्रंचजुहुया–दाद्यन्तेद्युनिशोस्सदा ।
दर्शेनचार्द्धमासान्ते पौर्णमासेनचैवहि ॥ अ० ४ । २५॥
सस्यान्तेनवसस्येष्ट्या तथार्त्वन्तेद्विजोध्वरैः ।
पशुनात्वयनस्यादौ समान्तेसौमिकैर्मखैः (अ० ४। २६)
वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशुपापानि महापातकजान्यपि ॥ (अ० मं०)

दिन रात के आदि अन्त में नित्य अग्निहोत्र करे आधे महीने में दर्श यज्ञ से, और पूरे मास पर पौर्णमास यज्ञ द्वारा होम करे ॥

धान्य कटने पर नवसस्येष्टि नामक यज्ञ, इस यज्ञ का नाम कई टीकाकारों ने आग्रहायणेष्टि भी लिखा है और ऋतु के अन्त में अध्वर यज्ञ से और अयन (उत्तरायण दक्षिणायन) की आदि में पशुयज्ञ से और वर्ष के अन्त में सौमिक यज्ञ से यजन करे। यहां पर पशु का अर्थ यह नहीं है कि पशुओं को मार कर हिंसारूपी पाप और दुग्धादि की अलाभ तथा पशूपकार रूप हानि करे किन्तु पशु का अर्थ शब्दस्तोम महानिधि में देव लिखा है अर्थात् देव यज्ञ करे पशुपति नाम महादेव का भी है जो कि पुराणों में एक योगीश्वर माने गये हैं पशुपति का अर्थ परमेश्वर भी है क्योंकि वह देवों का पति है (पश्यतिसर्वमिति पशुः, उणादिकोषे,)।

प्रतिदिन वेद का यथाशक्ति अभ्यास रखनेवाला, और पञ्चमहायज्ञादि में निष्ठित पुरुष पाप वरन महापापों का शीघ्र नाश करता है—

हम ऊपर लिख आए हैं कि देवतों को हवि अग्नि द्वारा पहुंचता है अर्थात् यही उन का सत्कार कर्त्ता (सरवराहकार) है वेदों में अग्नि को देवदूत लिखा है जैसा कि यजुर्वेद से प्रतिपन्न है ॥

अग्निंदूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे ॥ देवां २ ॥ आसादयादिह ॥ य० अ० २२ मं० १७ ॥

परमात्मा कहते हैं कि अग्नि जो इस संसार में दूत के समान काम करने योग्य है और (हव्यवाहम्) होम के पदार्थों को ले जाने वाला है तथा दिव्य भोगों को (सादयात्) प्राप्त कराने वाला है उस को (पुरोदधे) आगे धरता हूं और तुम लोगों के प्रति ऐसा ही (अग्न्याधान) करने का उपदेश देता हूं।

यही अग्नि जब विधिवत् स्थापित किया जाता है तो सारे संसार को पवित्र कर सुख पहुंचाता है इस विषय का वर्णन यजुर्वेद के २२ वें अध्याय में स्पष्ट है और अनेक स्थलों पर भी है यहां पर संक्षेप से कुछ दिखाया जाता है ॥

ओ३म्—प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा, वाचे स्वाहा, मनसे स्वाहा; ॥ य० अ० २२ मं० २३ ॥

(प्राणाय) जो श्वास भीतर से बाहर को निकलता है (अपानाय) जो भीतर को घुसता है (व्यानाय) जो सारे शरीर में रमता है तथा (चक्षुषे) आंख (श्रोत्राय) कान (वाचे) वाणी और (मनसे) मन, इन सबों की शुद्धि पुष्टि और सरलगति के लिये यज्ञ की स्वाहा अर्थात् सत्क्रिया है ॥

ओ३म्—प्राच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, दक्षिणायै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, प्रतीच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, उदीच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, ॥ मं० २४ ॥

इस मन्त्र में पूर्वादि * दश दिशाओं की होम से शुद्धि वा पवित्रता दिखाई गई है—और मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है इस लिये विशेष करके अर्थ नहीं लिखा।

ओ३म्—अद्भ्यः स्वाहा; वार्भ्यः स्वाहा; उदकाय स्वाहा; तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा; स्रवन्तीभ्यः स्वाहा; स्यन्दमानाभ्यः

*—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, और वायव्य, तथा अधर व उर्द्ध्व—

स्वाहा; कूप्याभ्यः स्वाहा; सूद्याभ्यः स्वाहा; धार्याभ्यः स्वा-हा, अर्णवाय स्वाहा; समुद्राय स्वाहा; सरिराय स्वाहा; मं०२५॥

(अद्भ्यः) सामान्य जल (वार्भ्यः) उत्तम जल (उदकाय) जो पानी वाष्प उपर उठता है, (तिष्ठन्तीभ्यः) बंधा जल (स्रवन्तीभ्यः) वेगसे टपकते वा गिरते झरनादि जलों (स्यन्दमानाभ्यः) सामान्य बहते हुए जलों के लिये (कूपेभ्यः) कूपजलों (सूद्याभ्यः) भली भान्ति भिगोने अर्थात् वर्षते पानी (धार्याभ्यः) धारण योग्य जल अर्थात् जो स्नान पानादि में विशेषता से आते हैं-(अर्णवाय) बड़ा नद (समुद्राय) समुद्र (सरिराय) नद्यादि के उत्तम जल इन सब की स्वच्छता के लिये इस मन्त्र में होम विहित है।

ओ३म्-वाताय स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय स्वाहा, मेघाय स्वाहा, विद्योतमानाय स्वाहा, स्तनयते स्वाहा, अव स्फूर्जते स्वाहा, वर्षते स्वाहा, अववर्षते स्वाहा, उग्रंवर्षते स्वाहा, शीघ्रं वर्षते स्वाहा; उद्गृह्णते स्वाहा, उद्गृहीताय स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा, नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

इस मन्त्र में पवन, धूम, अभ्र, बादल का कारण पतला बादल व आकाश आदि मेघ घने तथा चमकते बादल, कड़कती हुई बिजली, गिरती बिजली व-र्षते बादल दुतहे आदि में नीचे के बादल, वेग से वा रिमझिम वर्षते हुए बा-दल, नीहार (कुहरा) आदि का निर्मल होना दर्शाया है, ॥

ओ३म्-अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा, पृ-थिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा, दिवे स्वाहा, दिग्भ्यः स्वा-हाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यैदिशे स्वाहा, अर्वाच्यैदिशे स्वाहा॥२७॥

(अग्नये) पेट के भीतर की आग अर्थात् जाठराग्नि (सोमाय) रस (इन्द्राय) जीव व शरीर की बिजली और धरती आकाश प्रकाश दिशा (आ-शाभ्यः) विदिशा (ऊर्व्यै) अर्थात् अनेक रूप दिखाने वाली दिशाओं आदि के लिये स्वाहा (उत्तम क्रिया) वर्णित है।

ओ३म्—नक्षत्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा अहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा सँव्वत्सराय स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्यां ᳫ स्वाहा, चन्द्राय स्वाहा' सूर्य्याय स्वाहा, रश्मिभ्यः स्वाहा, वसुभ्यः स्वाहा, रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा, मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

इस मन्त्र में नक्षत्र नक्षत्रसमूह दिनरात से लेकर साल तक, तथा प्रकाश भूमि चन्द्र लोक सूर्य लोक पृथिव्यादि आठ वसु, दश प्राण, १२ आदित्य पव सम्पूर्ण इन्द्रिय व विद्वान्, मूल, शाखा, फलफूल और ओषधि आदि के लि स्वाहा प्रयोग है इसी प्रकार और भी मन्त्रहैं जिनको विस्तार भयसे नहीं लिखा

बड़े शोक की बात है कि जिस हिन्दू जाति के पूज्य वेदों में सूर्य व चन लोक तक की पवित्रता का विधान है वे ही हिन्दू प्रभात उठ कर मलमूत्र आदि १२ प्रकार के मलों और हुक्के की दुर्गन्ध (वदवू) से, पवित्र जल थल को मैल करते हैं और उस के पापजन्य दोष की निवृत्ति जो यज्ञ है उस को भूल ग हैं उक्त मन्त्र से आर्यधर्म का कितना महत्त्व टपकता है जिस आर्यजाति के लि उस के मान्य ग्रन्थों में सूर्य और चन्द्र लोक तक को यज्ञ से पवित्र करने क आज्ञा है वह आर्य हिन्दू समुदाय टका भर घी व धूप से इन दिनों अपन घर भी पवित्र नहीं करता यह परम आक्षेप का स्थल है ।

अब अग्निहोत्र करने की संक्षेप से विधि लिखते हैं जिस परमोत्तम का की इतनी महिमा है उस को अवश्य विधिवत् करना चाहिये अत एव उस क रीति का लिखा जाना आवश्यक ही है ।

यज्ञशाला की भूमि चौरस और शुद्ध होनी चाहिये तथा वह स्थान पवि और निरापद् हो अधिक होम करना हो तो ४ वर्ग गज धरती में १२ खंभ खड़े करना चाहिये ऊपर से पांच गज की उचाई देकर बंगला नमा बनाना अ थवा सदा के लिये स्थान बन जाय इस विचार से ही टीन डलवा देना चाहि

और टीन के नीचे काठ के तखते रहें जिस से टीन गरम न होगी और शालास्थान को पुष्टता पहुंचेगी यज्ञशाला ऊपर को इस प्रकार खुली रहे कि धुआं तो निकल जावे किन्तु वर्षा का पानी न आसके यज्ञकुण्ड नित्य होम के लिये आठ से १६ अंगुल तक का बहुत है विशेष के निमित्त अर्थात् जो लाख आहुति देनी हो तो २ वर्ग गज का बनाया जाय और पच्चीस हजार के लिये १ वर्ग गज उपयुक्त है इस में २५०० अढाई हजार आहुति मोहन भोग की भी आ सकती हैं और जो घृत की हजार तक आहुति देनी हों तो भी सवाहाथ वर्ग गज का कुण्ड अवश्य चाहिये इन कुण्डों में पांच अंगुल की मेखला रखना कोई कुण्ड हो ऊपर से नीचे को ढलवा बने और ऊपर की लंबाई व चौड़ाई से नीचे की वर्गाकृति चौथाई रहे और गहराई भी लंबाई व चौड़ाई के बराबर हो, यदि कहीं पर कुण्ड खोदने का अवसर न हो तो थोड़े होम के लिये मिट्टी डाल कर वेदी (चौतरियासी) बना लेना चाहिये चारो ओर मंगल द्रव्य अर्थात् हल्दी व रोली आदि की सुन्दर रेखा खींचना चाहिये तथा पत्र पुष्प कदली वंदनवार से वेष्टित करके और पूर्ण जल भरे सुशोभित पात्र चारो कोनों पर रखने चाहिये कि अग्नि का भय न रहे—परन्तु नित्य के साधारण होम के लिये इतने सजाव की आवश्यकता नहीं है ॥

यज्ञ का अग्नि

नित्य होम के लिये जो अग्नि कुण्ड में स्थापित किया जाता है उस का नाम गार्हपत्य है इस को नित्यस्थिर रखना चाहिये प्राचीन काल में इतना हवन होता था कि यह आग दूसरे समय तक बनी रहती थी, इस अग्नि से यज्ञ व संस्कारों में जो आग रक्खी जाती उस को आहवनीय कहते हैं मंत्र से संस्कार की गई अग्नि को प्रणीतकहते हैं और सभ्य परिचारय उपचारय ये तीन नाम वेदी में आग धरने की जगहों के हैं। दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय ये तीन अग्नि मिल कर त्रेताग्नि कहाते हैं गार्हपत्याग्नि से अग्नि ले जाके जहां दक्षिणाग्नि स्थापित की जाती वह स्थान आनारय कहाता है।

यज्ञ की समिधा ॥

कुण्ड वा वेदी के प्रमाण से छोटी बड़ी जो सुभीते से समासकें ये आम,

वेल, गूलड़, ढांख आदि की बक्कल निकाल कर कटवाना चाहिये नीव आदि की कटु न हों। मैली जगह का उपजा काष्ठ न हो—घुन वा कीड़ा, मकोड़ा भी उस में देख लेना चाहिये यदि कोई जीव वा मलिन वस्तु हो तो उस काष्ठ को त्याग दे—यज्ञ की समिधा यज्ञशाला से पूर्व व पश्चिम ओर के खंभो के पास रखना चाहिये इस विपुल काष्ठ को प्राग्वंश कहते हैं * ॥

होम के द्रव्य ॥

प्रथम—सुगन्धित व रोग नाशक—कस्तूरी केसर अगर तगर सफेद चन्दन वालछर कपूर कपूरकचरी लैंग जायफल जावित्री गिलोय आदि ॥

द्वितीय—पुष्टिकारक-घृत गोधूम (गेहूं) चावल उड़द आदि ॥

तृतीय मिष्ट—मिसरी कन्द शहद आदि ॥

चतुर्थ—फलादि-गोला, छुहारा, दाख, आम्र, मखाना, चिरौंजी, बादाम आदि ॥

अन्न को पकाकर घृत शर्करा युक्त करके होम करना चाहिये मोहनभोग खीर लड्डू पूड़ी आदि मीज कर चरु बनाना उचित है ॥

१ सेर घी के मोहन भोग में १ रत्ती कस्तूरी और १ मासे भर केशर डालना-चाहिये ॥

प्रत्येक वस्तु को अच्छेप्रकार देख लेना कि उस में कोई अपद्रव्य न रहे ॥

आहुति प्रमाण ॥

१ वार में छः मासे घी वा अन्य चरु इस से कम नहो अधिक १ छटांक तक की मंत्रोक्त आहुति देना।

यज्ञ के पात्र ॥

कुण्ड वा वेदी—इस का प्रमाण ऊपर लिख चुके हैं–८ अंगुल से ९६ अंगुल तक

आज्यस्थाली— इस में घृत रक्खा जाता है सो उचित प्रमाण से छोटी वड़ी चौड़े मुंह की बनवाना ॥

* हवि के गृह से उत्तर देश में सदस्य आदि का जो गृह है उसे भी प्राग्वंश कहते हैं ॥

चरुस्थाली—जिस में होम का चरु रक्खा जाता है १ हाथ व्यास की सामान्य है. विशेषतः शाकल्य के अनुसार छोटी बड़ी भी बन सकती है. ये कम से कम ३ होनी चाहिये १ में मेवा दूसरी में मोहन भोग, तीसरी में सुगंधित द्रव्य—

स्रुव———१२ अंगुल से ४८ अंगुल तक और काम पड़े पर १९२ अंगुल तक बनाना पड़ता है साधारण में २४ अंगुल का उचित है अंगूठे की गांठ के बराबर गहिरा हो. खैर की लकड़ी वा तांबे आदि का बनाना।

कूर्च———बाहुमात्र-कुशों का होता है. इस से सामिधेनी आदि में काम लिया जाता है ।।

मुसलोलूखल—अर्थात् मूसर व ओखली-पैर से नाभिमात्र ओखली और मनुष्य के शिरतक मूसल होता है अथवा इच्छा प्रमाण बनालेना, मूसर कत्था की लकडी का ओखली ढांखे की लकड़ी की यदि ये लकड़ी न मिलें तो जो प्राप्त हो उन का बना लेना—इस से यज्ञ का चरु कूटा जाता है ।।

शूर्प—यह फटकने के निमित्त होता है सो वांस का बनाना चाहिये चाम से सूप न वांधा जाय ॥

जुहू—बाहुमात्र-इस में रख कर पूर्णाहुति दी जाती है ॥

मूलेखात उपल—अर्थात् सिलबट्टा द्रव्य पीसने के काम आता है-प्रमाण जैसा समय में उचित हो बना लिया जाय-

शृतावदान-यह प्रादेश मात्र लम्बा होता है और चौड़ा दो अंगुल का इस का अगला भाग तीक्ष्ण हो-यह पक्वचरु को अवदान (शुद्ध) करने के काममें आता है ॥

उपवेश-२४ अंगुल का होता है ॥

पूर्णपात्र-१२ अंगुल लंबा चौड़ा, छः अंगुल गहरा इस में २५६ मुठी चावल डाल कर ब्रह्मा को दक्षिणा में दिया जाता है-संस्कार विधि में तो इस के चावलों का प्रमाण ४ मनुष्यों का आहार मात्र है और बम्बई की छपी दश कर्म पद्धति में २५६ मुठी का है

प्रणीता-१२ अंगुल लंबा ८ अंगुल चौड़ा इस में यज्ञ कार्य के लिये जल रक्खा

जाता है इस के जल से यज्ञपात्र पवित्र किये जाते हैं और यज्ञान्त में इस के जल का आचमन करके प्रणीता वहीं औंधा देते हैं ॥

प्रोक्षणी–यह भी प्रणीता के प्रमाण होती है प्रणीता में से शुद्ध जल इस में लाया जाता और यही जल सब होम द्रव्यों को शुद्ध करने के काम आताहै तथा घृत आहुति कुण्ड में देकर शेष इस में छोड़ देते हैं इस घृत का भोजन किया जाता है।

अरणी–ये ३ लकड़ी होती हैं यज्ञ में इन्हीं की रगड़ से आग निकाल कर प्राचीन लोग अग्न्याधानादि करते थे एक ऊपर को होती सो उत्तरारणी जो कि १८ अंगुल लंबी होती है दूसरी नीचे की अधरारणी कहाती है जो कि ४ अंगुल ऊंची और छः अंगुल गहरी होती है बीच में एक गोल दंड रहता है जो घूमता है उस को मंथन दंड बोलते हैं ॥

[पुरोडाशपात्रीदोहोतीहैं]–इस में यज्ञ करके बचे हवि के भाग रक्खेजाते हैं इस की लंबाई प्रादेशमात्र और चौड़ाई आठ अंगुल की होती है तथा गहिराई छः अंगुल की बीच में मंडलाकार बनाई जाती है ॥

षडवदत्त—छः अंगुल की कंकलिका के समान होना चाहिये दोनो ओर खुदा हुआ ॥

यज्ञों के नाम ॥

अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, नव शस्येष्टि, आग्रायणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढ-पशु, सौत्रामणि, ज्योतिष्टोम जिसका नामान्तर अग्निष्टोम वा सोमयाग वाजपेय, अतिरात्र, पुत्रेष्टि, अश्वमेध इत्यादि ॥

इन यज्ञों की विधि और फल जानने के इच्छुकों को सूत्र ग्रन्थ देखना चाहिये। यह विषय बहुत बड़ा है. ऐसा सुगम नहीं कि यह विधान इस छोटी सी पुस्तक में आजाय ॥

जो होम नित्य सायं प्रातः किया जाता सो अग्निहोत्र, अमावस को दर्श यज्ञ, पूर्णमासी को पौर्णमास यज्ञ, नया अन्न होने पर जो यज्ञ होता उसे नव सस्येष्टि बोलते हैं. आग्रायणी अगहन में होती है। नवसस्येष्टि कहने से अन्न की दोनों फसलें आजाती हैं। वसंत ऋतु में ज्योतिष्टोम यज्ञ होता है इस को सौमिक यज्ञ भी बोलते हैं अर्थात् सोमरस सम्बन्धी जो सोमलता से किया जाय।

यज्ञ कार्य कर्त्ता

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धोग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः। तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणाऽआपृणध्वम् ॥ य० अ० २५ मं० २८

होता, अध्वर्यु, आवयाः अग्निमिन्ध, ग्रावग्राभ, शंस्ता, ब्रह्मा, पुरोहित, उद्गाता, और यजमान ऋत्विज् आदि पुरुष यज्ञ कार्य करते कराते हैं।

समस्त ऋत्विज् सदाचारी सुशील, विद्वान्, सच्चे आस्तिक, वेदवित्, यज्ञ कर्म को जानने वाले होने चाहिये ॥

यजमान–जो सुशील संयमी ईश्वर भक्त अपने धन व्यय से यज्ञ करता है इस को व्रती व यष्टा भी कहते हैं सोमवान् यज्ञ करने में यही दीक्षित कहाता है—

ऋत्विज्–जो ऋतु २ में होम करे। कौषीतकी शाखा में १७ ऋत्विज् कहे हैं ॥

अग्न्याधेयं पाकयज्ञा–नग्निष्टोमादिकान्मखान्।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥
मनु० अ० २ श्लो० १४३

ब्रह्मा–चारोवेदों का ज्ञाता, यज्ञ कर्म में प्रवीण सुशील विद्वान् होता है जो कि वेदी के दक्षिण ओर उत्तराभिमुख बैठता है यज्ञ के समस्त कार्य कर्त्ता ऋत्विजों पर दृष्टि रखना इस का काम है यज्ञ कार्य में चूक पड़ने से ब्रह्मा ही उत्तर दाता होता है ॥

पुरोहित–जो यजमान का सच्चा हितैषी धर्मात्मा विद्वान् हो उसे बनाना,

यह यजमान का प्रतिनिधि भी है यज्ञ में पुरोहित वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठता है ॥

अध्वर्यु–अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला इसका उत्तर में आसन दक्षिण मुख होता है यजुर्वेद जानना इस को अवश्य है ॥

प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, ये भी अध्वर्यु की शाखा है ॥

अग्निमिन्ध–अग्नि को काष्ठादि से प्रदीप्त करने पर ही इस की दृष्टि रहती है आग्नीध वा आग्नीध्र वा अग्नीध्र ये तीन नाम भी जो कि अग्नि प्रज्वलित रखने वालों के हैं ॥

पोता–वह पुरुष है जो यज्ञ के पदार्थों को पवित्र रखता है ।

आवयाः–दान कार्य का अधिष्ठाता होता है

ग्रावग्राभः–ग्रावन् शब्द है जिस का अर्थ मेघ व पत्थर है–सो यज्ञ कार्य में शिलवट्टा सम्बन्धी पीसने के काम का करने वाला ग्रावग्राभ होता है "ग्रावाणं प्रस्तरं गृह्णाति स ग्रावग्राभः"

शंस्ता–यज्ञ का प्रशंसक–

होता–यह ऋग्वेदवित्, पण्डित पूर्वाभिमुख अर्थात् वेदी के पश्चिम बैठता है विशेषतः घृताहुति देना इस का काम है कभी २ यह भी यजमान की जगह काम करता है मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत्, ये भी होता की जैल में हैं । इन के दान की गाय होती है ऐसा भी विधान शास्त्रों में पाया जाता है ॥

उद्गाता–यह सामवेद का गाने वाला होता है इस का पूर्व आसन पश्चिम मुख होता है काम पड़े पर ब्रह्मा के साथ भी स्वर भरता है अर्थात् ब्रह्मा से लगा हुआ बैठता है । प्रस्तोता प्रतिहर्त्ता सुब्रह्मण्य ये इसी उद्गाता की श्रेणी में हैं ॥

आचार्य–वेदमन्त्रों की व्याख्या करने वाला सुशील, जितेन्द्रिय, सदाचारी वेदविद्या के दान में कुशल आचार्य कहाता है

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥
मनु० अ० २ श्लो० १४०

सामान्यहोमविधिः

उक्त प्रकार सम्पूर्ण आवश्यक पदार्थों के प्रस्तुत होने पर कार्यारम्भ करना चाहिये विशेष२यज्ञों वा संस्कारों से विशिष्ट २ पात्रों का काम पड़ता है और उस के चरु व मंत्रादि भी पृथक् २ हैं तथापि सामान्यरीत्या अग्न्याधानादिक मंत्र व विधि एक ही हैं ॥

प्रथम यज्ञ कुण्ड वा वेदी को वहुत चौरस व स्वच्छ कर लेना चाहिये उस की भूमि में किसी प्रकार वाल व मैली मिट्टी न हो कुण्ड सिद्धि ग्रन्थ देखने से ज्ञात होता है कि पूर्वकाल में यज्ञस्थान की परीक्षा करने वाले जुदे होते थे वे लोग वता देते थे कि यहां खोदनेसेशुद्धभूमि निकलेगी पारस्करादि गृह्य सूत्रों में कुश कंडिका नाम से एक विशेष विधि वेदी वनाने की लिखी है उस विधि का अभिप्राय यही है कि शुद्धता पूर्वक कार्य किया जावे और विधिवत् सव वस्तु यथा स्थानपर स्थापित की जावें इस विधि को आजकल के पण्डित यथार्थ न समझ कर कहीं व्यर्थ भी लीक पिटौअन करदेते हैं उक्त विधिसे ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल के ऋषि लोग यज्ञपात्र प्रायः यज्ञशाला में ही मजाते और घृतादि से तपवाते थे अव तो पण्डित लोग कुश के अग्रभाग को स्रुवा के अग्रभाग से और मूल को स्रुवा मूल से तथा मध्यभाग को मध्यभाग से छुवा कर धर देते हैं। एक कुश जलाकर घृत व चरु के ऊपर चारो ओर घुमाकर अग्नि में छोड़ देते हैं और इस से घृत आदि की शुद्धि मानते हैं। इस का प्रयोजन यदि कुछ है तो इतना ही है कि ऐसा करने से घी के इधर उधर कोई मशक दंशादिजीवहो तो उड़जावे इसी प्रकार प्रणीता के जल से प्रादेशमात्र कुश द्वारा सब चरु छिड़क कर पवित्र करते हैं परन्तु वस्तुतः उस की पवित्रता वही है जो प्रथम चरु वनाने में कीगई है जल का छींटा देने से वह वस्तु कुछ धुल नहीं जाती प्रत्युत गीली हो जाती है। परन्तु लकीर के फकीरों के सन्मुख यदि ऐसा कहो तो काट खाने को तयार हो जांय, इस से यह न समझना कि लेखक मुख्य कुश कंडिका के विरुद्ध हैं हां लीक पीटना भी ठीक नहीं जितना उचित है अवश्य करना चाहिये। मुख्य वात यह है कि वेदी को चौरस स्वच्छ वनावे उस के चारों ओर ईशान दिशा से आरम्भ करके कुश डाल देवे इस का अभिप्राय यह है कि कृमि आदि जीव मेखला पर न चढ़ सकें और मेखला इस लिये वनाई जाती है कि यज्ञ कुण्ड में जलादि ढुलक कर न जा गिरे न रेंगने वाले जंतु सहसा चढ़कर अग्नि में जा गिरें अग्निकुण्ड की पश्चिम दिशा में घी

और उत्तर अलंग में प्रणीता रखना प्रणीता तथा मेखला के वीच में प्रोक्षणी जिस से पश्चिमासन (पूर्वाभिमुख) वैठे हुए यजमान के हुतशेष घृत प्रोक्षणी में डालते समय सुभीता रहे–ब्रह्मा यज्ञ कार्य का संदर्शक है अर्थात् कार्य विधिवत् होने की शिक्षा करता और भूल चूक का उत्तर दाता है उत्तराभिमुख वैठता यह ऊपर लिख आये हैं। तथा पुरोहित व यजमान पूर्वाभिमुख पश्चिम दिशा में वैठते हैं होता लोग अग्नि के चारो ओर स्थिति करते हैं। गर्भाधानादि संस्कारों तथा विशेष होमों में यजमान के साथ पुरोहित, आचार्य तथा ब्रह्मा की अपेक्षा है। नित्य अग्निहोत्र के लिये आवश्यकता नहीं। सीधा मंत्रोक्त अग्न्याधानादि कार्य जो कि नीचे लिखे अनुसार करना चाहिये।

यजमान यज्ञ में आए हुए ऋत्विजों को इस प्रकार आदर देकर बोले "ओ३म्–आवसोः सदने सीद" अर्थात् यज्ञ के घर में विराजिये इस के उत्तर में ऋत्विक् कहें कि "सीदामि" वैठता हूं वा अनेक हों तो 'सीदामः, ऐसा बोलें उपरान्त यजमान प्रतिज्ञा करे कि "अद्य कर्त्तव्यहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्त्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे"–

अर्थात् आज अमुक विषयक होम के लिये ब्रह्मत्व पद (एवं आचार्य्यत्व वा होतृत्व) में आप को चन्दन फूल वस्त्रादि भेट से स्वीकार करता हूं। यह प्रतिज्ञा वा संकल्प का संक्षेप है। इस के उत्तर में ऋत्विक् लोग कहें कि वृतोस्मि वा सब एक स्वर वोलें तो वृतास्मः अर्थात् मैं स्वीकार करता वा हम अंगीकार करते हैं। प्रत्येक कार्यकर्त्ता का न्यारा २ संकल्प उस के पद की व्याख्या के नाम से होना अच्छा है॥

होम के काम में जो जो विधि के मन्त्र हैं उन को प्रथम वोल के तब कार्य करना वा अड़चल न पड़े तो कार्य्य वा मन्त्रोच्चारण साथ करे किन्तु प्रथम क्रिया पीछे मन्त्र पाठ ऐसा न चाहिये। कारण कि मन्त्र ही कर्म का द्योतक होता है वरन खालीवातों से न होना चाहिये। फल वस्त्र तथा साईरूप किञ्चित् दक्षिणा सहित उचित है यदि फलादि न हो तो केवल फूल ही सही, यह एक प्रकार का यज्ञ कर्त्ताओं का मान्य है और यज्ञादिकों में दान अवश्य चाहिये, सो केवल ऋत्वजों को ही नहीं किन्तु श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार विद्यालय, अनाथालय और औषधालय आदि को अवश्य देना चाहिये, विना दक्षिणा का यज्ञ हत होता है। "हतोयज्ञस्त्वदक्षिणः"–मनु जी ने भी लिखा है। "पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः १ नस्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथंचन" (मनु अ० ११

श्लो० ३९) श्रद्धावान् जितेन्द्रिय यजमान यज्ञ में अनेक दान करे न कि स्वल्प दान (बरायनाम) से यज्ञ होता है। भगवद्गीता में ऐसे यज्ञ की तामसी संज्ञा लिखी है॥

"विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितंयज्ञं तामसंपरिचक्षते „

शास्त्रोक्त विधि से,' वा शुद्धता हीन कच्चा वा जला चरु मैला कुचैला घी आदि मन्त्र तथा दक्षिणा और श्रद्धारहित मानो विना मन भाड़सा झोंकते कु-काले हों—ऐसा यज्ञ तामसी कहाता है यज्ञ की दक्षिणा उधार करना भी उचित नहीं चाहे थोड़ी दे जो देना है उसे कल पर न टाले,' शुभ कार्य में विलम्ब वा आगे पीछे का सोच अनुचित है। नहीं ज्ञात कि वह कल पुनः मिले वा न मिले अथवा चित्त ही बदल जावे यज्ञ समय में सात्विकी वृत्ति का उदय होता है फिर वह रज तम की ओट में अस्त हो जाती है इस हेतु "शुभस्य शीघ्रम् „ यही ठीक है-" गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् " किसी सुजन का वाक्य है कि धर्माचरण ऐसा विचार करके करना मानो हमारी चोटी मृत्यु ने पकड़ ही ली है—इस कारण यज्ञ का दान धर्म के आधार करना, मिहन्ताना न समझना चाहिये विद्वान् सदाचारी ऋत्विजों का वरण करके उन का गन्ध मालादि से पूजन करना यही प्रत्यक्ष देवता हैं किसी निरक्षर को यज्ञ कार्य में न बिठावे हां पत्र पुष्प वा समिधा चयनादि के लिये चिन्ता नहीं—

सामान्य होम वा संस्कार अथवा यज्ञादि में बुलाने से आये हुए सुजनों का भी गन्धादि लेपन वा फूलमाला और ताम्बूलादि से सत्कार करे प्रथम गायत्री मन्त्र द्वारा (परमात्मा का स्मरण वा प्रार्थना करे कि यज्ञ कार्य करने में मेरी बुद्धि स्थिर रहे) शिखा बन्धन करके पुनः नीचे लिखे तीन मन्त्रों से प्रत्येक को बोल कर ३ आचमन करे ॥

ओ३म्—अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥
ओ३म्—अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥
ओ३म्—सत्यंयशः श्रीर्मयिश्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

तदुपरि नीचे लिखे मन्त्रों से जल द्वारा मध्यमा व अनामिका से अंगस्पर्श करे प्रथम दक्षिण पुनः वाम अंग का स्पर्श करना चाहिये ॥

ओ३म्—वाङ्म आस्येऽस्तु *—इस से मुख का—

* अर्थात् मेरे मुख में वाणी का कार्य रहे—और मेरी नाक में प्राण वायु का काम ठीक होते रहें—

ओ३म्–नसोर्मे प्राणोऽस्तु–नाक के दोनों छिद्रों का–
ओ३म्–अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु–दोनों आंखों का–
ओ३म्–कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु–दोनों कानों का–
ओ३म्–बाह्वोर्मे बलमस्तु–दोनों बांहों का–
ओ३म्–ऊर्वोर्मऒजोऽस्तु–दोनों जांघों का यों इन्द्रियस्पर्श करके–
ओ३म्–अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु †॥

इस मंत्र से दहिने हाथ में जल लेकर मार्जन करना अर्थात् सारे शरीर पर जल छिड़कना परन्तु जब सन्ध्योपासन करके पीछे उसी समय अग्निहोत्र करो तो आचमन व अंगस्पर्शादि की आवश्यकता नहीं–

तत्पश्चात्–"ओ३म्-भूर्भुवः स्वः"=इन व्याहृतियों का उच्चारण करके ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि लाना अथवा घी का दीपक जला कर उसी से कपूर की डेली प्रकाशित करके उस डेली को कांसे के पात्र वा (यदि कांस्य पात्र न हो तो) मिट्टी के सकोरे में रख कर खड़े होकर यजमान वा पुरोहित अपने सम्मुख की ओर पात्र का मुंह करके अग्न्याधान करे जिस का मन्त्र यह है कि–

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव्वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥*
य० अ० ३ मं० ५

---

† मेरे शरीर से अरिष्ट दूर होवे–

* इस का अर्थ यह है कि मैं (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न के लिये (भूम्ना) विभु अर्थात् ऐश्वर्य से (द्यौरिव) आकाश में सूर्य के समान (वरिम्णा) अच्छे २ गुणों से (पृथिवीव) विस्तृत भूमि के तुल्य (ते) प्रत्यक्ष वा (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाश लोक में रहने वाली (देवयजनि) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहां यज्ञ करते हैं वा (पृथिवी) भूमि के (पृष्ठे) पीठ पर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः) सूर्य लोक इन के अंतर्गत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थान पर करता हूं ॥

अतः पर नीचे लिखे मन्त्र से पंखा आदि कर के अग्नि प्रदीप्त करे। हलके तांबे वा टीन का पंखा हो तो बहुकाल के लिये प्रशस्त है परन्तु इस पंखे को अपने ऊपर हांकने के काम में न लावे न अन्य किसी यज्ञ पात्र को निजी काम में वर्त्ते-यज्ञपात्रों का वर्त्तमान यज्ञ ही में करना-यज्ञ के वर्त्तन चांडाल आदि नीचों को छुवाना न चाहिये ॥

[अथ पवनदानमन्त्रः]

ओ३म्-उद्बुध्यस्वाग्ने ! प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ७ सृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ य० अ० १५ मं० ५४ (१)

॥ अथ समिदाधानमन्त्राः ॥

(२) ओ३म्-अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने-ध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्च-

---

(१) (अग्ने !) हे ! परमेश्वर वा अग्नि (उद्बुध्यस्व) प्रकाशित हूजिये (प्रतिजागृहि) हम को चैतन्य कीजिये । (इष्टापूर्त्ते) यज्ञ की वा इष्ट सुखों की पूर्त्ति के लिये (अस्मिन्) इस वर्त्तमान काल में (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामि समय में (अयम्) यह (यजमानः) यह यज्ञ करने वाला (संसृजेथाम्) सिद्धि को प्राप्त हो (विश्वेदेवाः) सारे विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष (सीदत) बैठें इस के उपरान्त प्रादेशमात्र समिधा नीचे लिखे प्रत्येक मन्त्र से एक २ जो चन्दन आम वा पलाश (ढ़ाक) की हो प्रदीप्त अग्नि पर धरना चाहिये॥

(२) इस का अर्थ यह है कि (जातवेदः) हे जातवेद अग्ने ! (अयम्) यह (इध्म) ईंधन (ते) तेरा (आत्मा) व्यापने की जगह है (तेन) उस ईंधन से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्द्धस्व) बढ़िये (च) और (इद्ध) प्रदीप्त कर (च) और (वर्द्धय) बढ़ाओ (अस्मान्) हम लोगों को तथा (प्रजया) सन्तान से (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्राह्म तेज से (अन्नाद्येन) भोज्यादि पदार्थों से (समेधय) समृद्धकर-

भावार्थ-कि जो लोग अग्निहोत्रादि में समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करते हैं उन्हे धन धान्य पशु सन्तान और ब्रह्म तेज का लाभ होता है ॥

सेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥

इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से एक समिधा घी में डुबो कर अग्नि पर छोड़ना ॥

(१) समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्हव्याजुहोतन स्वाहा-

इदमग्नये इदन्नमम ॥१॥ य० अ० ३ मं०—१

(२) सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन्तीव्रञ्जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा-

इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम । य० अ० ३ मं० २

इन ऊपर के दो मन्त्रों से दूसरी एक समिधा उक्त प्रकार चढ़ाना ॥

(३) तन्त्वासमिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा ॥

इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम ॥ य० अ० ३ मन्त्र ३

इस मन्त्र से १ समिधा अग्नि को देना अग्नि के प्रज्वलित होने पर नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देना स्रुवे को अंगुष्ठ मध्यमा तथा अनामिका से पकड़ना यदि घृत दीनावस्थादि कारण से न्यून मिले तो भी नित्य कर्म न छोड़ना, चाहें एक २ विन्दु ही घृत होमा जाय ॥

(१) हे विद्वान् लोगो तुम (समिधा) जिस ईंधन से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उस से तथा (घृतैः) घी से (अग्निम्) आग को (बोधयत) उद्दीप्त करो जैसे (अतिथिम्) अतिथि का सेवन किया जाता है वैसे आग को (दुवस्यत) सेवन करो और (आ) (अस्मिन्) इस [आग] में (हव्या) होम की वस्तुओं से (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो ॥

(२) हे पुरुषो! तुम (सुसमिद्धाय) भली भांति प्रकाशित (शोचिषे) शुद्ध किये गये वा (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि में (तीव्रम्) तीव्र स्वभाव (घृतम्) घी आदि पदार्थों को (जुहोतन) होमो ॥

(३) (तत्) उस भौतिक अग्नि को (त्वा) जो (व्यत्यय के कारण यहां पर त्वा का अर्थ तुम के वदले जो है) (अंगिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठ्य) भेद कराने में प्रबल है (बृहत्) वड़ा (शोच) संताप अर्थात् प्रकाश करता है (समिद्भिः) लकड़ियों से तथा (घृतेन) घी से (हमलोग) (वर्द्धयामसि) वढ़ाते हैं ॥

ओ३म् अयन्त इध्मआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येनसमेधय स्वाहा ।

इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम-

इस मन्त्र का अर्थ ऊपर आगया इस लिये यहां नहीं लिखा इस के उपरान्त नीचे लिखे मन्त्रों से आघाराज्याहुति करना ॥

॥ आघारावाज्याहुत्यौ ॥

ओ३म् अग्नये स्वाहा* ॥ इदमग्नये इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से प्रज्वलित अग्नि में उत्तर अलँका को आहुति देना ।

ओ३म्—सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से अग्नि में दक्षिण अलंग को आहुति देना तिस पीछे दो आहुति कुण्ड के मध्य में देना वे आज्यभागाहुति कहाती हैं ।

आज्यभागाहुत्यौ ॥

ओ३म्–प्रजापतये स्वाहा–इदं प्रजापतये–इदन्नमम ।

ओ३म्–इन्द्राय स्वाहा–इदमिन्द्राय इदन्नमम ॥

इन चारों आहुतियों के समुदाय का नाम " आघारावाज्याभागाहुति" है । अर्थात् यह नाम बोलने से प्रागुक्त चारों आहुति समझी जाती हैं । सो नित्य अग्निहोत्र के लिये आवश्यक है ॥

इसके उपरान्त चार व्याहृति आहुति और एक स्विष्टकृत् होमाहुति और एक प्राजापत्याहुति है सो विशेष होम के लिये है नित्य के वास्ते आवश्यक नहीं–

* इस का अभिप्राय यह है कि यह आहुति ज्ञान स्वरूप परमेश्वर की आज्ञा पालनरूप प्रसन्नता के लिये उसे वा अग्नि को दीजाती इदन्नमम–यह मेरे वास्ते अर्थात् स्वार्थ हेतु नहीं ऐसे ही अन्य सोमाय आदि शब्दों का अर्थ जानो ॥

व्याहृत्याहुतयः ॥

ओ३म्–भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्नमम ।
ओ३म्–भुववर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्नमम ॥
ओ३म्–स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदन्नमम
ओ३म्–भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा–इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्नमम* ॥

स्विष्टकृदाहुतिः ॥

ओ३म्–यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम ॥

प्राजापत्याहुतिः ॥

ओ३म्–प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥
(यह आहुति मौन हो करना)

प्रातःकाल होम करने के मन्त्र ॥

ओम्–सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥१॥ सूर्य्यो

व्याहृतियों का अर्थ ॥

*(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है । इस से परमेश्वर का नाम " भूः " है (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इस लिये परमेश्वर का नाम " भुवः " है (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता और सब का ठहरने का स्थान तथा सुख स्वरूप है इस से परमेश्वर का नाम (स्वः) है

होमयज्ञ-(पूर्व प्रकाशितानन्तर सितम्बर के पत्र के १६ वें पेज से आगे)

वर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥२॥ ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥ ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुपसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥ (१)

सायङ्काल होम करने के मन्त्र

(२) ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥
ओ३म् अग्निर्वर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥२॥
ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥
ओ३म् सजूर्देवेनसवित्रासजूरात्र्येन्द्रवत्याजुषाणोऽग्नि-र्वेतु स्वाहा ॥४॥

सायङ्काल इन चार मंत्रों से आहुति देना और तीसरे मंत्र अर्थात् जो प्रथम है वही तीसरी संख्या पर भी लिखा है उस को मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति दान करना चाहिये । ये मंत्र यजुर्वेद के अध्याय तीसरे के ९ । १० हैं॥

(१) (सूर्योज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाश स्वरूप और सूर्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है उस की प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं (सूर्योवर्चो) जो सूर्य परमेश्वर हम को सर्व विद्याओं का देने वाला और हम लोगों से उन का प्रचार कराने वाला है उसी की अनुग्रह से हमलोग अग्निहोत्र करते हैं। (ज्योतिःसूर्यः) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करने वाला सूर्य अर्थात् सव संसारका प्रकाशक ईश्वर है उस की प्रसन्नता के अर्थ हमलोग होम करते हैं (सजूर्देवेन) जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक वायु व दिन के साथ परिपूर्ण सव पर प्रीति करने वाला और सव के अंग २ में प्राप्त है वह अग्नि परमेश्वर हम को विदित हो उस के अर्थ हम लोग होम करते हैं ॥

(२) (अग्निर्ज्यो०) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप है उस की आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं और उस का रचा हुआ जो यह भौतिकाग्नि है जिस में द्रव्य डालते हैं सो इस लिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु रूप करके जल वा वायु तथा वृष्टि के साथ मिला के शुद्ध करदे (अग्निर्वर्च्चो०) अग्नि जो परमेश्वर सो वर्च अर्थात् सव विद्याओं का देने वालाहै तथा भौतिक अग्नि आरोग्य तथा बुद्धि बढ़ाने का हेतु है इस लिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं। (सजूः) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक वायु तथा रात्रि के साथ पूर्ण सब पर प्रीति करने वाला और सव के अंग २ में प्राप्त है वह अग्नि परमेश्वर हम को प्राप्त हो जिस की प्राप्ति के लिये हम होम करते हैं ॥

नीचे लिखे आठ मंत्रों से दोनों काल होम करना यदि कोई एक ही समय करे तो सायं प्रातः तथा उभय कालीन समस्त मंत्रों तथा प्रारम्भ के आघारावाज्यभागाहुति के मंत्रों से अर्थात् समस्त मंत्रों से एक काल में होम कर देवे॥ "यांमेधां०" इस मन्त्र से लेकर " अग्नेनय० " तक ३ मंत्रों का अनुमोदन स्वामी जी महाराज ने संस्कार विधि में किया है अतः ये ३ मंत्र बढ़ने से आठ होगये ॥

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समाना मंत्राः॥

ओ३म्–भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥ ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदंवायवेऽपानाय इदन्नमम ॥ २॥ ओ३म् भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्नमम ॥४॥ ओ३म् आपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरों स्वाहा ॥५॥

ओ३म्–यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तयामामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा (१) ॥ य० अ० ३२ मं० १४

ओ३म्–विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा (२) ॥ य० अ० ३० मं० ३

(१) हे (अग्ने) ईश्वर ! (देवगणाः) अनेकों विद्वान् (च) और (पितरः) ज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि को (उपासते) सेवन करते हैं (तयामेधया) उस बुद्धि वा धन से (माम्) मुझ को (अद्य) आज (स्वाहा) सत्यवाणी से (मेधाविनम्) बुद्धिमान् वा धनवान् (कुरु) कीजिये ॥

(२) हे (देव सवितः) परमेश्वर आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुःखों को (परासुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आसुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये ॥

ओ३म्-अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देववयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा (१) ॥ य० अ० ४० मं० १६

प्रागुक्त आठ मन्त्रों की आहुतियों के पश्चात्-ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा-इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ वार मन्त्रोचारण करके ३ आहुति देवे इस प्रकार नित्य कर्म समाप्त है यदि कोई संस्कार करना हो तो प्रागुक्त मन्त्रों तथा जिस २ संस्कार में जो २ विशेष मन्त्र संस्कार विधि में लिखे हैं उन से आहुति देना चाहिये और सामान्यरीत्या विशेष होम के लिये व संस्कारों के निमित्त भी ईश्वरस्तुति प्रार्थना के मन्त्रों तथा स्वस्तिवाचन व शान्ति करण के मन्त्रों से आहुति दान करना चाहिये इस से भी अधिक शाकल्य हो तो ऋक् तथा यजुर्वेद के स्तुतिरूप मन्त्रों से और गायत्र्यादि मन्त्रों से होम करना अन्त में नीचे लिखे मन्त्र से उक्त प्रकार पूर्णाहुति करना ॥

ओ३म्-पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो (२) य० अ० ३ मं० ४९

(१) हे (देव) दिव्यस्वरूप (अग्ने) परमात्मन् जिस से हम लोग (ते) आप के लिये (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कार पूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें । इस से (विद्वान्) सब को जानने वाले आप (अस्मत्) हमलोगों से (जुहुराणम्) कुटिलतारूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिये (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान वा धन से हुए सुख के लिये (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिये ॥

(२) इस का अर्थ यह है कि जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुति (परापत) होमे हुये पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथ्वी में उत्तम जल को प्राप्त करती है उस से हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रम युक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के व्यवहारों के समान (विक्रीणावहै) ॥

पूर्णाहुति के पश्चात् "ओ३म्–सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु"(१)इतने मन्त्र से प्रणीता पात्र के जल से आचमन करके ॥

दुर्मित्रयास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः (२) य० अ० ३६ मं० २२

इस आधे मन्त्र से प्रणीता को वहीं औंधा देना । उपरान्त

ओं त्र्यायुषंजमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोअस्तु त्र्यायुषम् (३) य० अ० ३ मन्त्र ६२

इस मन्त्र से परमात्मा की प्रार्थना करे इन दिनों प्रायः प्रचार में उक्तमन्त्र से लोग अग्नि होत्र की भस्म माथे तथा गले आदि में लगाते हैं परन्तु स्वामी जी ने इस विषय में कोई विधिवाक्य नहीं दिखाया है हां यज्ञोपवीतसंस्कार में अवश्य विधान है ॥

ओ३म्–पूषासि धर्मायदस्वः

इस मन्त्र से घृत युक्त प्रोक्षणी के जल का आचमन भी प्रायः लोग कराते हैं (४) इति ॥

(१) जनवरी सन् ९१ ई० की छपी है (जगद्विनोद यन्त्रालय अलीगढ़ की) नित्य कर्म पद्धति जो पं० हरिश्चन्द्र शर्मा उपदेशक आ० स० बुलन्दशहर की है उस में भी प्रोक्षणी के जल का आचमन उक्त मन्त्र द्वारा लिखा है तथा अयमग्निगृहपतिर्गार्हपत्यः इत्यादि यजुर्वेद के अध्याय तीसरे के (३९ से ४३ तक) तथा १७ वा इन छः मन्त्रों से गार्हपत्योपस्थान करना भी लिखा है ॥

(२) हे ईश्वर आप की कृपा से जल तथा ओषधि हमारे लिये सुमित्रिया अर्थात् सुख दायक हों ॥

(३) जो पापी हम से द्वेष करता है वा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं उस को पूर्वोक्त पदार्थ प्रतिकूल हों ॥

(४) इस का अभिप्राय यह कि हे प्रभु हमारे तीनोपन सुधरें वा सौ के ऊपर ३०० वर्ष से ४०० तक की आयु वाले हों ॥

होम में कैसा चरु डालना चाहिये ॥

हमारे देश के बहुतेरे ब्राह्मण अविद्या के वशीभूत हो कच्चा अन्न अग्नि में लुड़वा देते हैं अर्थात् कच्चे तिल जौ और चांवल का होम कराते हैं सो ठीक नहीं—गृह्य सूत्रों में आमान्न का विधान नहीं है। आश्वलायन गृह्य में लिखा है कि "अथ सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात्" ॥ ५ । १ कं० २ ॥

अर्थात् सिद्ध चरु का होम सायं प्रातः करना चाहिये सूत्रों में जब कि पाक क्रिया तक लिखी है फिर हम नहीं जानते कि वे किस प्रमाण पर कच्चा अन्न रखते हैं—जो चटर २ होकर ऐसा बुरा उटकता है कि यज्ञ में बैठना कठिन पड़ जाता है और जलने की एक विल्हायंध भी आती है अतएव हलवा पूरी पकवान से होम कराना चाहिये यदि यवतण्डुल आदि का ही करना अभीष्ट हो तो इन को सुष्ठु पका कर उस में घृत व मिसरी डालकर उत्तम चरु बनाय हवन करना—

दूसरी शंका प्रायः लोगों की मांस के होम पर है उस विषय में प्रश्नोत्तर की रीति पर नीचे लिखा समाधान है।

(प्र०) क्या यज्ञों में हिंसा होती है ?

(उ०) यज्ञों में हिंसा करना वेद विहित नहीं, जो लोग पशु को मार के बलिदान करते यह उन की भूल है मांस में न सुगन्ध है न उस के परमाणु रोग-नाशक हैं जो वस्तु स्वयं १२ प्रकार मलों से युक्त है उस में सुगन्ध कैसे सम्भव है ॥

(प्र०) अश्वमेध यज्ञ में घोड़ा गोमेध में गौ. और नर मेध में मनुष्य मारे जाते थे क्या यह मिथ्या है।

(उ०) हां मिथ्या है मांसाहारियों ने अपने स्वार्थ के लिये ये बातें चलाई हैं। मन्त्रों व सूत्रों पर वामियों ने उलटे टीके किये हैं—धर्मशास्त्रों में बनावटी श्लोक भी गढ़ २ कर धरदिये हैं। जैसा कि मनु में लिख मारा कि—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये नच मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

अर्थात् न मांस खाने में दोष न मद्य पीने वा मैथुन करने में यह तो मनुष्यों की मानो स्वाभाविक प्रवृत्ति है किन्तु इस की निवृत्ति में महाफल है अ-

न्यत्रान्यत्र भी ऐसे वाक्य मिलते हैं। यथा प्रोक्षितं भक्षयेन्मासम् ॥ "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति–प्रोक्षित अर्थात् यज्ञ सम्बन्धी मांस खाने में पाप नहीं क्योंकि वेद रीति से यज्ञ में हिंसा करना हिंसा में गण्य नहीं इसी प्रकार—"सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" सौत्रामणी यज्ञ में मद्य पीना पातक नहीं ऐसा भी लिख मारा है किन्तु जो बात वस्तुतः पापरूप है सो कदापि श्रेय नहीं।

(प्र०) यदि ये वाक्य हैं तो इन का अर्थ क्या है ॥

(उ०) (सौत्रा०) इसका अभिप्राय यह है कि सौत्रा मणी यज्ञ में सोमवल्ली जो एक उत्तम ओषधि है उस का रस पीना चाहिये। मद्य व मांस किसी को स्वभाव से प्रिय नहीं मैथुन को छोड़ मद्य मांस ऐसी वस्तु नहीं कि उस के खाने पीने को स्वयं मन चले। मांस की प्रवृत्ति मांसाहारी पशुओं में भी तभी होती है जब वे मांस खाते वा अपने मा बाप को खाता देखते। हां सिंहादि किसी२ पशु में मांस की प्रवृत्ति स्वभाव से देखी जाती है। सब में नहीं, किन्तु मनुष्यों को तो स्वभाव से मांसाशी नहीं पाते, जिस पुरुष ने मांस कभी नहीं खाया वह मांस को देख स्वभाव से उस के खाने में प्रवृत्त नहीं होता, प्रत्युत घिनाता है और मद्य भी किसी को स्वाभाविक प्रिय नहीं है। अश्व का अर्थ अग्नि भी है देखो उणादिकोष १५१ सूत्र की व्याख्या केवल घोड़ा ही अश्व शब्द का अर्थ नहीं और मेध का अर्थ यज्ञ और घृत है। आज्यंमेधः" जिस यज्ञ में अग्नि के गुणों का वर्णन हो सो अश्वमेध है अग्नि में घी डालने का नाम भी अश्वमेध है शतपथ ब्राह्मण में भी "राष्ट्रंवा अश्वमेधः" (१३।१।६।३) ऐसा पाठ है देश रक्षा ही अश्वमेध है राजा स्वदेश स्थिरता व उन्नति के लिये न्याय से प्रजा का पालन करे। यही इस वाक्य का अभिप्राय है–जब ऊपर लिखे अनुसार अनेक अर्थ सिद्ध हैं तो दीन घोड़े ने क्या अपराध किया जो उसे मार कर होम किया जाता है इसी प्रकार गोमेध का अर्थ यह है कि अन्न इन्द्रियां किरण को पवित्र रखना उणादि कोष के दूसरे पाद के ६७ वें सूत्र में गौ शब्द का अर्थ ("गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः"—पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वा) पशु इन्द्रिय सुख, किरण, वज्र, चन्द्रमा, भूमि, वाणी, और जल है वेदों का विधिवत पाठ करना भी गोमेध है और जो न मांस भक्षणे-दोषो०) मनुस्मृति में लेख है सो वस्तुतः मनुवाक्य नहीं कारण कि अनेक ठौर

मनुजीने निषेध किया है अहिंसा साधारण धर्म है (१) स्वर्ग व मोक्ष की प्राप्ति का साधन है (२) सुख का हेतु है हिंसा करने से पाप व दुःख होता है ऐसा मनु जी अपनी स्मृति में अध्याय २ । ४ । ५ । ६ । १० । ११ आदि में कई ठौर लिख चुके हैं । और ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य को यहां तक वलदेकर निषेध किया कि ये लोग आपत्तिकाल में भी हिंसा न करें (३) चाहे वैश्य वृत्ति भले ही करलें—देखो मनु० अ० १० श्लोक ८३ का इस के सिवाय हिंसक को प्रायश्चित भी बताया है और प्रायश्चित्त पाप का होता है यह पुष्टि भी ११ वें अध्याय में की है. देखो श्लोक १३१ से १४१ तक ॥

इसी प्रकार यज्ञ वाक्य शंख अत्रि व्यास वृहस्पत्यादि स्मृतियोंमें भी हिंसा का निषेध किया है विस्तारभय से अधिक नहीं लिख सकते—

(प्र०) यहां तो आपने बहुत कुछ बल लगाया परन्तु वेदों मे भी तो अश्वमेध यज्ञ के प्रकरण में घोड़े का मांस होमना महीधर स्वामी ने लिखा है सो एक स्थल पर नहीं अनेक मन्त्रों में अश्व का अर्थ घोड़ा किया है तथा घोड़ा उस का बांधना मारना होम करना यज्ञ शेष मांस वांटदेना इत्यादि लिखा है क्या उस को आप नहीं मानोगे—देखो यजुर्वेद के २५ वें अध्याय के ३५ वें मन्त्र को—

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं यईमाहुः सुर भिर्निर्हरेति । ये चार्वतोमांसभिक्षामुपा-

---

१ अहिंसयैवभूतानां कार्यंश्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक्चैवमधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्याधर्ममिच्छता ॥२।१५९॥
अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतंसामासिकंधर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ १० । ६३ ॥
२ योबन्धनवधक्लेशान् प्राणिनान्नचिकीर्षति ।
ससर्वस्यहितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते । ५ । ४६ ॥
३ वैश्यवृत्यापिजीवंस्तु ब्राह्मणःक्षत्रियोपिवा ।
हिंसाप्रायांपराधीनां कृषिंयत्नेनवर्जयेत् ॥ १० । ८३ ॥

संतउतोतेषामधिगूर्तिर्नईन्वतु ॥ यजु० अ० २५ मं० ३५ ॥

॥ महीधर भाष्यम् ॥

(येजनाः पक्कं वाजिनमश्वं परिपश्यन्ति अयंपक्कइति जानन्ति । यईम् ईमित्यव्ययंचार्थे ये च इत्याहुः एवंकथयन्ति किम् सुरभिः सुगन्धः पाकोजातः अतोनिर्हर अग्ने सकाशादुत्तारयेति । ये च जनाअर्वतोऽश्वस्य मांसभिक्षामुपासते हुतशिष्टमांसयाचनां कुर्वन्ते । उतो अपिचतेषां पाकद्रष्टादिजनानामभिगूर्त्तिः उद्यमोनोऽस्मानिन्वतु । प्रीणातु ॥ यद्वायंमन्त्रोदेवपरोव्याख्येयः ॥ येदेवाः पक्कं वाजिनं परिपश्यन्ति कदा होष्यतीति ये च विलम्बं दृष्ट्वा सुरभिः पाको जातोऽस्मभ्यं निर्हर देहीत्याहुः ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासते मांसं याचन्ते तेषामभिगूर्त्तिः संकल्पोऽस्मान् प्रीणातु सफलो भवत्वित्यर्थः) ॥

भा०—यह है कि जो मनुष्य घोड़े के मांस को पका हुआ जान कहते हैं कि सुगन्ध आने लगी (अर्थात् पकगया) इस कारण अग्नि से उतारो और जो पुरुष घोड़े के मांस की भिक्षा मागते हैं अर्थात् हवन करके शेष बचे मांस की याचना करते हैं कि पाक के देखने वाले जनों का उद्यम हम लोगों को प्रसन्न (अर्थात् पका माल मिले) अब इस मन्त्र का देवता पर व्याख्यान करते हैं जो देवता लोग पके हुए घोड़े को जानते हैं जो विलम्ब देखकर कहते हैं कि कब इस का होम करेगा—सुन्दर पाक हुआ हमारे लिये (निर्हर) दो जो देवता घोड़ा के मांस को मागते हैं उन का यह संकल्प हम को सफल करे ॥

(३) इस मन्त्र का अर्थ जो महीधर ने किया है सो ठीक नहीं बात तो

यह है कि यस्यनास्ति स्वयं प्रजा शास्त्रंतस्य करोतिकिम् । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति " ॥ जिसे स्वयं बुद्धि नहीं शास्त्र क्या करे नेत्रहीन को दर्पण बोध नहीं कराता,—अथवा जो पुरुष जानबूझ कर किसी स्वार्थ के वश अनर्थ करता उस पर भी वश नहीं चलता—महीधरने यहां भी वैसा ही ऊटपटांग अर्थ किया है जैसा (गणानांत्वा) इत्यादि मन्त्रों के अर्थों में यजमान की स्त्री का घोड़े से वह काम कराना लिखा है जो काम संतानोत्पत्ति के लिये पुरुष स्त्री से करता है । यह तो एक बड़ी मोटी बात है । आप लोग विचार सकते हैं स्त्री के गुप्तस्थान और घोड़े के मूत्र स्थान का योग कैसे सम्भव है । यदि आजदिन कोई ऐसे अनर्थक वाक्य छापे तो हमारी सभ्य सर्कार विना दण्ड दिये न छोड़े शोक !! २ कहां तो वेदों को ये लोग भी ईश्वरीय पुस्तक बताते और कहां उसी में प्रागुक्त अनर्थ दिखाते जो सर्वथा सृष्टि क्रम से विरुद्ध हैं —इन्हीं अर्थों को देखकर वेदों से लोगों की रुचि और भक्ति जाती रही और जैनियों ने लिखा कि " चत्वारो वेदकर्त्तारो भाण्डधूर्त्तनिशाचराः " अर्थात् चारों वेदों के कर्त्ता भाण्ड धूर्त्त व राक्षस हुए । महात्मा गौतम बुद्ध का चित्त भी ऐसे ही अनर्थों से हट गया और एक बड़ा समुदाय जैन बौद्धों का पृथ्वी पर हो गया—यदि इन को वेदोपदेश होता तो लंका चीन जापान आदि देश बौद्धों के बदले आर्य प्रजा से परिपूर्ण होते ॥

चार्वाक आभणक आदि जैनबौद्ध के मतवालों ने अच्छा खण्डन किया है उन के ग्रन्थों में लिखा है कि—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमेगमिष्यति । स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥

अर्थात् यज्ञ के लिये मारा गया (घोड़ा आदि) पशु अग्नि में होम करने से यदि स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता आदि को मार के उन्हें स्वर्ग में क्यों नहीं भेजता कारण कि स्वर्ग ही के वास्ते बड़े २ यज्ञादिक किये जाते हैं—यह गुटका तो ऐसा सहज है कि क्रमशः वर्त्तने से सब सहज ही स्वर्ग को चले जावें अर्थात् यजमान के बूढ़े होने पर उसका पुत्र उसे मारकर स्वर्ग पहुंचावे इसी प्रकार उसका पोता अपने पिता को यों परस्परा चलने से स्वर्ग का मार्ग बहुत ही सुगम हो जायगा ॥

देखो उक्त मन्त्र का सत्य अर्थ यह है जो महर्षि दयानन्द स्वामिकृत भाष्य से उठाया गया है ॥

॥ महर्षिदयानन्दभाष्यम् ॥

(ये) (वाजिनम्) वेगवन्तमश्वं (परिपश्यन्ति) सर्वतोऽन्वक्षिन्ते (पक्वम्) परिपक्वस्वभावम् (ये) (ईम्) प्राप्तम् (आहुः) (सुरभिः) सुगन्धः (निः) नितराम् (हर) निस्सारय (इति) (ये) (च) (अर्वतः) अश्वस्य (मांसभिक्षाम्) मांसयाचनाम् (उपासते) (उतो) अपि (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभ्युद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) प्राप्नोतु ॥ ३५ ॥

अन्वयः—येऽर्वतो मांसभिक्षामुपासते च येऽश्वमी हन्तव्यमाहुस्तान्निर्हर दूरं प्रक्षिप। ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति उतो अपि तषां सुरभिरभिगूर्त्तिर्न इन्वत्विवति ॥ ३५ ॥

(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांस भिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़े को (ईम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहुः) कहते हैं उन को (निःहर) निरन्तर हरो दूर पहुंचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़ा को (पक्वम्) पक्का * (परिपश्यंति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उनका (सुरभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हो उन के अच्छे काम हम को प्राप्त हों ॥

भा०— जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा रोके जाने चाहियें। जिस से मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो—

सच तो यह है कि वेद का शुद्ध अर्थ पवित्र अन्तः करण में ही भासता है

* पक्का अर्थात् सवारी में काम देने योग्य देखते भालते हैं सम्पादक

इसी से वेदों का अर्थ करना धीर तपस्वी जितेन्द्रिय-लोभ रहित सच्चे साधु महात्मा का काम है—

महीधर को इतना भी बोध न रहा कि मांस पकने में सुगन्ध आती है वा दुर्गन्ध ? जहां मांस कटता विकता वा पकाया जाता सदा कुवास ही आती है । तथा यह भी न सूझा कि जिस वेद में हम हिंसा बताते हैं उसी में अहिंसा तो स्पष्ट है । फिर इस दशा में क्या वेदों का ईश्वर ईसाई मुसलमानों के खुदा के समान भ्रान्तियुक्त है जो भूला करता है ॥

देखो यजुर्वेद में हिंसा का निषेध अध्याय मन्त्र में हुआ है कि घोड़ा भैंस गौ बकरी और दो पैर वाले जीव इन को न मारो ॥

अश्वंमाहिंꣳसीः, गांमाहिंꣳसीः, अविं माहिंꣳसीः, । माहिंꣳसीर्द्विपादं पशुं मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व । इमꣳ साहस्रꣳ शतधारं माहिंꣳसीः ॥ य० ॥ अ० मं० ॥

इसी प्रकार अथर्ववेद के आठवें काण्ड के दूसरे अनुवाक का २३ वां मन्त्र भी शिक्षा करता है कि जो मनुष्य कच्चा वा पुरुष का पकाया हुआ मांस वा अण्डे वा गर्भ के बच्चे खाते हैं उन्हें तू नष्ट करता है ॥

य आमं मासमदन्ति पौरुषेयं चये क्रविः । गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ अ० ८।६ २३ ॥

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि वेदशास्त्र में हिंसा नहीं तब यज्ञों में क्यों ? अतएव हिंसा रहित सदा सब को होम यज्ञ करना चाहिये ॥ इति

अथ होमयज्ञ-शुद्धाशुद्ध-पत्रम् ।

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	पतले	पले
१	१०	पहिले	पहिलो
३	४	"यजुर्वेद् में आदि"	"यजुर्वेद में अग्नि आदि"
६	१५	जिल्दवस्ता	ज़िन्दावस्ता
७	११	वर्षा	वर्ष में
११	१३	है था	है
१३	१४	दुग्धादि	दुग्धादि का
१५	३	वाष्पउपर	वाष्परूप ऊपर
२०	१५	पडवदत्त	पडवत्त
२३	१३	पिटौअन	पिटौअल
२३	१५	स्त्रुवा	स्त्रुव
२३	१६	स्त्रुवामूल	स्त्रुवमूल
२४	२५	वरन	वरण
२५	४	"श्रद्धावि— रहितं"	"श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते । गी० अ०१७ श्लोक १३"
२६	२७	स्थानपर	स्थापन
२९	६	आघाराज्य	आघारावाज्य
२९	७	"आघारा — वाज्याहुत्यौ"	"आघारावाज्याहुती"
२९	९	अलँका	अलँग का
२९	३	"आज्यभागाहुत्यौ"	"आज्यभागाहुती
		ओ	ओ३मूस्वरादित्यायव्यानायस्वाहा- इदमादित्याय- व्यानायइदन्नमम"
३८	१९	प्रसन्न	प्रसन्न करे
४१	८	अध्यायमंत्र	"अध्याय १३ मं० ४२।४३।४४।४७।४८
४१	१०	"अश्वंमा० हिथंसी:	"अश्वमाहिथंसी:० य० अ० १३ मं० ४२"
४१	१०	"गांमाहिथंसी:"	"गांमाहिथंसी:० य०अ०१३मं०४३"
४१	१०	"अविंमा- हिथंसी:"	"अविंमाहिथंसी:० य०अ०१३मं०४४
४१	११	माहिथं सीर्द्विपाद पशुमयुंमे धमग्नेजुषस्व	"माहिथंसीर्द्विपादंमयुंपशुंमेधमग्ने जुषस्व०। य०अ०१३ मं० ४७"
४१	१२	"इमथंसा हस्त्रथंशत धार मा- हिथंसी:	"इमथंसाहस्त्रथंशतधारं-माहिथंसी: य०अ०१३मं०४९"

आर्यगुर्जर पुस्तकालय फर्रुखाबाद की विकाऊ पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

[स्वरचित वा मुद्रित]

१ ईश्वरसिद्धि मूल्य =)
२ जगत् की उत्पत्ति स्थिति व प्रलय का वर्णन =)॥
३ पुराण लीला -)॥
४ भोजन विवेक -)।
५ विद्यार्थिशिक्षा)॥।
६ भागवतव्यवस्था)॥।
७ पुराणोत्पत्ति)॥।
८ आर्यसमाज के उपकार)।
९ भजन विनोद)॥
१० महर्षि स्वामि दयानन्द स० की कुछ दिनचर्या -)।
११ सामाजिक स्तुति प्रार्थनोपासना)॥
१२ पुरुषार्थ)।
१३ साधु भास्करानन्द जी ने जो वलायत में देखा)॥
१४ धूम्रपानदोष (हुक्कापीनेकेऐब))॥
१५ लेखदीपिका (धर्मादि विषयों पर ३१ लेख) ≡)
१६ आर्यधर्म का महत्त्व)।
१७ वैदिक विजय)॥
१८ मद्य दोष (शराब की बुराइयां))॥
१९ भूतनिर्णय (यह उर्दू में भी है) -)।
२० आवागमन)॥
२१ नमूना भागवत)॥
२२ वेद महिमा)।
२३ नाम करण (छपेगा))०
२४ होम यज्ञ =)॥
२५ मत निर्णय)॥
२६ जीव क्या है (छपता है))०
२७ झींगुर महातम (शिक्षा की शिक्षा और हंसी सेंत की)।१२॥
२८ विधवा विपत्ति उपन्यास)॥।

[पं० तुलसीराम जी की]

२९ संस्कृत शिक्षा की प्रथम पुस्तक)॥।
३० तथा द्वितीय पुस्तक -)।
३१ तथा तृतीय पुस्तक =)॥
३२ तथा चतुर्थ पुस्तक ॥)
३३ श्वेताश्वतर उपनिषद् (संस्कृत मूल तथा सुगम संस्कृत व सरल भाषा टीका सहित पढ़ने ही योग्य है ।≡)
३४ नमस्ते)।
३५ नालिकाविष्कार (अर्थात् तोपवंदूख भारत में प्राचीन काल से थीं)॥।
३६ वेश्या लीला नाटक (रंडी बाज़ी के दोष) ।)॥
३७ भजनेन्दु -)
३८ चाणक्य नीति सार संग्रह (भाषा टीका सहित) -)।
३९ विवाह के समय वर वधू के पढ़ने के लिये आवश्यक मंत्र अर्थ सहित)॥
४० वैदिक देव पूजा -)॥
४१ अज्ञान निवारण -)॥
४२ विदुरनीति (मूलवभाषाटीका) ।=)
४३ लावनी (गाने लायक))।
४४ चौदह विद्या वा चौंसठ कला)।

(बाबू विहारीलाल जब्बलपुर लि०)

४५ फलित ज्योतिष -)
४६ ब्रह्मकीर्त्तन)॥
४७ कर्मवर्णन)॥

आर्यधर्म सम्बन्धी अन्य पुस्तक भी हैं बड़ा सूची मगाकर देखिये ॥

गणेशप्रसाद शर्मा—फर्रुखाबाद